❀ पुस्तक—दिशा दर्शन

❀ लेखक—शान्ति मुनि

❀ प्रथम अनावरण—१९९२

❀ प्रकाशक—श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, बीकानेर

राजस्थान पि. ३३४००५

❀ अर्थ सौजन्य — श्री किशनलाल जी जैन, रोहतक

❀ मुद्रक—जैन आर्ट प्रेस,

समता भवन, बीकानेर

❀ मूल्य— २५ रु

हजारों हजार
पथच्युत
मानवों को
जीवन दर्शन
की
स्वस्थ दिशा देने वाले
विराट व्यक्तित्व के धारक
समता योगी
धर्मपाल प्रतिबोधक
आचार्य श्रेष्ठ
श्री नानेश के
दिग्बोधक पाद पद्मों
को

—शान्ति मुनि

मर्यादा ही उत्तम आचरण का सुरक्षा कवच है। प्रभु महावीर का सदेश है कि आचरण की धारा सम्यक् ज्ञान के चट्टानी तटबधो मे ही मर्यादित रहनी चाहिये। आचार्य गुरुदेव श्री गणेशीलाल जी म सा ने श्रमण सस्कृति की सुस्थिति एव उन्नयन के लिए 'शात-क्राति' का अभियान चलाया। इस अभियान को ओजस प्रदान करना साधुवर्ग का दायित्व है। इसके लिए साधुवर्ग को जहा साधना के पथ पर अविचल रूप से आरूढ़ रहना है, वहीं अपनी साधनागत अनुभूतियो की अभिव्यक्ति द्वारा सामान्य जन के लिये सुदृढ साधना-सेतु का निर्माण भी करते चलना है। 'शात-क्रांति' आत्म साधना से ही परमात्म साधना के उदय का अभियान है, जो आत्मपक्ष, परात्मपक्ष एव परमात्मपक्ष तीनो को उजागर करने में सक्षम है। साधु एव साध्वी समाज ने विगत पच्चीस वर्षों मे सम्यक् ज्ञानार्जन की दिशा मे अच्छी दूरी तय की है। रथ बढ रहा है, पथ भी प्रशस्त हो रहा है।

—आचार्य श्री नानेश

मर्यादा ही उत्तम आचरण का सुरक्षा कवच है। प्रभु महावीर का सदेश है कि आचरण की धारा सम्यक् ज्ञान के चट्टानी तटबधो मे ही मर्यादित रहनी चाहिये। आचार्य गुरुदेव श्री गणेशीलाल जी म. सा ने श्रमण सस्कृति की सुस्थिति एव उन्नयन के लिए 'शात-क्राति' का अभियान चलाया। इस अभियान को ओजस प्रदान करना साधुवर्ग का दायित्व है। इसके लिए साधुवर्ग को जहा साधना के पथ पर अविचल रूप से आरूढ़ रहना है, वही अपनी साधना-गत अनुभूतियो की अभिव्यक्ति द्वारा सामान्य जन के लिये सुदृढ साधना-सेतु का निर्माण भी करते चलना है। 'शात-क्राति' आत्म साधना से ही परमात्म साधना के उदय का अभियान है, जो आत्मपक्ष, परात्मपक्ष एवं परमात्मपक्ष तीनो को उजागर करने में सक्षम है। साधु एव साध्वी समाज ने विगत पच्चीस वर्षों मे सम्यक् ज्ञानार्जन की दिशा मे अच्छी दूरी तय की है। रथ बढ रहा है, पथ भी प्रशस्त हो रहा है।

—आचार्य श्री नानेश

प्रकाशकीय

समता विभूति, समीक्षण ध्यान योगी आचार्य श्री नानेश के ६९ वें जन्म दिवस पर रचित स्थविर प्रमुख, विद्वद्वर्य, तरुण तपस्वी, ओजस्वी व्याख्याता, श्रमण प्रवर श्री शान्ति मुनिजी की कृति 'दिशा दशन' प्रस्तुत करते हुए असीम प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। इसमे ग्रन्थित है अनुभूति की अमूल्य मणिया, जो मुनि श्री ने चिन्तन की गहराईयो मे पैठ कर सृजित की हैं। सघर्ष, तनाव एव विषमता के युग मे व्यक्ति आज बहिमुखी होकर भटक गया है भौतिकता की चकाचौंध मे और अटक गया है अस्थिर सुखाभास मे। सुख का अनन्त स्रोत हमारे भीतर है परन्तु वह बाह्य साधनो मे ढूंढने का असफल प्रयास कर रहा है। इस प्रकार वह भीड मे अकेला है और स्वय मे भीड भी।

मूलत व्यक्ति अपने आपमे पूर्ण एव शुद्ध चैतन्य या आत्म-स्वरूप है। अस्तित्व की रक्षा, अस्मिता एव अह के पोषण, मोह-तृष्णा आदि के कारण वह बाह्य पदार्थों को अपनी मानने लगता है। 'स्व' का यह विस्तार परिणामत पारस्परिक सघर्ष को जन्म देता है तो वैषम्य, ईर्ष्या व कलह का सूत्रपात भी करता है। मुनि श्री की ये वैचारिक रश्मिया

हमे अपना दृष्टिकोण परिवर्तित कर अन्तर्मुखी बनने का दिशा बोध प्रदान करती है ।

वस्तुतः दृष्टि के बदलने पर सृष्टि ही बदल जाती है। भीतर प्रवेश कर आत्म-साक्षात्कार होने पर व्यक्ति एक अनुपम शान्ति की अनुभूति करता है। इस कृति के माध्यम से जागृति एव प्रेरणा की उपलब्धि होगी ऐसा विश्वास है। एतदर्थ संघ मुनि श्री के प्रति श्रद्धावनत है ।

इसके प्रकाशन मे रोहतक निवासी श्री किशनलालजी सा. जैन का प्रमुख सहयोग रहा है । आप घोर तपस्वी श्री पुष्प मुनिजी म. सा., जिनका स्वर्गवास दिनाक १/८/६० को हो गया, के ससारपक्षीय पुत्र है। आप धर्मनिष्ठ, आचार-शील एवं आदर्श श्रावक है । उल्लेखनीय है कि सं. २०३६ मे श्री पुष्प मुनिजी म. सा. के निम्बाहेडा वर्षावास के दौरान उन्होने ६१ उपवास की घोर तपस्या की थी जो एक कीर्तिमान है ।

श्री किशनलाल जी एवं इनका पूरा परिवार धार्मिक संस्कारो से ओतप्रोत है । आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की इस सम्प्रदाय एव विशेषतः आचार्य प्रवर श्री नानालाल जी म. सा. के प्रति आपकी अविचल एवं अटूट श्रद्धा है ।

श्री अ भा साधुमार्गी जैन संघ आपके अर्थ-सौजन्य के प्रति आभार ज्ञापित करता है और आशान्वित है कि

भविष्य मे भी उनका इसी प्रकार सहयोग प्राप्त होता रहेगा। आशा है साधक एव श्रावक वर्ग 'दिशा दर्शन' से लाभान्वित होकर अन्तर्दर्शन करने मे प्रवृत्त होगे। हम बाह्य भटकाव से अन्तर्मुखी बनने का प्रयास करें तो नव प्रभात दूर नही है। इस दृष्टि से यह कृति पठनीय, मननीय एव अभिवन्दनीय है।

विनीत

पीरदान पारख

सयोजक, साहित्य समिति

गुमानमल चोरड़िया	सरदारमल कांकरिया
धनराज बेताला	डॉ. नरेन्द्र भानावत
मोहनलाल मूथा	केशरीचन्द सेठिया

सदस्यगण साहित्य समिति

भंवरलाल बैद	**चम्पालाल डागा**
अध्यक्ष	मंत्री

श्री अ. भा साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

अन्तर्दर्शन

वर्तमान जनजीवन की आपा-धापीपूर्ण स्थिति को देखते हुए लगता है कि मनुष्य एक ऐसे चौराहे पर खडा है, जहा से वह कही भी—किसी भी ओर जाने का निर्णय नही कर पा रहा है या साहस नही कर पा रहा है । उसे अपने चारो ओर फैले हुए विशाल राजमार्गों पर अनेकानेक विपत्तिया दिखाई देती है । उसे अपने आस-पास समस्याओ के सुदृढ एव विस्तृत जाल फैले हुए दिखाई देते हैं । ऐसी स्थिति मे वह किं कर्त्तव्य विमूढ हो जाता है, दिग्भ्रमित हो जाता है कि मुझे कौन-सी दिशा मे गति करनी चाहिये ।

जब हम आज के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, व्यावसायिक, धार्मिक, नैतिक एव राजनैतिक जीवन पर दृष्टिपात करते हैं, तो वहा जटिलतम

समस्याएं, तुमुल संघर्ष एवं दुर्दान्त तनावपूर्ण स्थितियां स्पष्ट दिखाई देती हैं। व्यक्ति जिस किसी भी क्षेत्र मे पैर रखता है, उसे वहा भटकाव एवं असफलता की आशकाए घेर लेती हैं। वह पद-पद पर स्खलन अनुभव करने लगता है और ऐसी स्थिति मे उसे आवश्यकता होती है एक अच्छे मार्गदर्शक की, एक सफल दिशादर्शक 'किं वा दिग्बोधक' की जो उसे अपने कार्य क्षेत्र मे सही मार्गदर्शन कर सके, किसी सम्यग् दिशा मे बढने का दिक्सूचन ही नही, प्रेरणा-मन्त्र भी प्रदान कर सकें।

प्रस्तुत कृति मे ऐसे ही दिग्बोधक सूत्र-संकेत प्रस्तुत किये गये हैं, जो जीवन के प्राय सभी मार्गों मे दिशादर्शन के साथ उन्नत साधना मार्ग मे गति-प्रगति की प्रेरणा भी देते हैं।

यह सुविदित है कि दिशादर्शन में अथवा मार्ग-दर्शन मे लम्बे-चौडे भाषण-प्रवचन की आवश्यकता नही होती है। वहा केवल सकेतो की ही अपेक्षा होती है, अत. यहा प्रस्तुत प्रत्येक सकेत सूत्रात्मक

है। इसमें थोडे शब्दो में बहुत कुछ कह देने का प्रयास किया गया है।

यो भी आज 'शॉर्टकट' की शैली अधिक रुचि-कर बनती जा रही है। जीवन इतनी तेज रफ्तार से दौड रहा है कि उसके पास कार्य अधिक और समय कम होता जा रहा है। प्राय प्रत्येक व्यक्ति समय की बचत करना चाहता है। वह सकेतो-इशारो मे बात करना चाहता है। विस्तृत प्रवचन-श्रवण एव लम्बे-चौडे लेखो के अध्ययन का उसके पास समय नहीं है। तो यह सूत्रात्मक शैली ही आज के इन्सान के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है, इसी दृष्टिकोण से प्रस्तुत कृति मे अर्थ-गाम्भीर्य सकेत प्रस्तुत किये गये हैं।

आज का युग वैज्ञानिक, तकनीकी विकास का युग अथवा अणु आयुधो का युग कहलाता है। इस वैज्ञानिक, टैक्नोलॉजी ने सूक्ष्मता मे शक्ति की खोज को अपना लक्ष्य बिन्दु बनाया है। आज तोप के गोलो का उतना प्रभाव नही रहा, जितना अणु

आयुधो का हो गया है। अणु आयुधो को भी न्यु-त्रोणो एव लेसर किरणो की सूक्ष्मतम खोज ने शक्ति-हीन-सा कर दिया है। अब शक्ति की खोज विशाल-काय पर्वतो-समुद्रो एव दिखाई देने वाले स्थूल तत्त्वो मे नही, सौर मण्डल की सूक्ष्मतम किरणो मे हो रही है।

ठीक यही दृष्टिकोण यहां अपनाया गया है। जीवन के विभिन्न पहलुओ मे जहा कही भी अल-गाव, भटकाव अथवा अवरोध उपस्थित होते है, व्यक्ति दिग्मूढ हो जाता है, जटिल समस्याओ के जाल मे फस जाता है, तो ये सूत्र उसे कुछ दिशा-बोध देकर उसकी समस्याओ का समाधान कर सकते हैं।

चूंकि इसमे जीवन के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, व्यावसायिक एव आध्यात्मिक सभी पह-लुओ पर दिशादर्शन किया गया है, अत इसका पाठकीय वर्गीकरण नही किया जा सकता। यह सर्वसाधारण के लिये सर्वोपयोगी एव सर्वजन हिताय-

सर्वजन-सुखाय के लक्ष्य को पूरा करने वाली कृति है ।

यद्यपि प्रस्तुत कृति मे अनुभूतिगत चिन्तन-प्रसगो को विशेष स्थान दिया गया है तथापि विभिन्न ग्रन्थो के अध्ययन से उद्भूत मनोमन्थन भी इसमे प्रस्तुत हुआ है, अत यह मेरी ही नही, आम व्यक्ति की अपनी कृति बन जाती है । मेरा दृष्टिकोण तो केवल इतना ही है कि जनसामान्य अपने जीवन मे इसे अपना दिग्सूचक यन्त्र बनाकर अपने जीवन के विविध दिग्गामी भटकाव को रोक कर एक स्वस्थ-सुन्दर समीचीन दिशा प्राप्त करे। जीवन के सम्यक् सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करे ।

यहा एक महत्त्वपूर्ण बात को नही भुलाया जा सकता है कि मेरा अपना कहने के योग्य यहा कुछ भी नही है । मैं जो कुछ हू, मेरे पास जो कुछ है, मैं जो कुछ बोलता, लिखता या कहता हू, वह सब मेरे अप्रतिम आराध्य, मेरे जीवन निर्माता समता विभूति, समीक्षण ध्यानयोगी, धर्मपाल प्रतिबोधक,

अनन्त-अनन्त उपकृति के केन्द्र आचार्य श्री नानेश का है। अतः यहां मैं यह कह सकता हूं कि प्रस्तुत कृति मे उसी महामहिम व्यक्तित्व के स्वरो की अनुगूंज है।

अन्त में पाठक इस कृति के द्वारा सम्यग् दिशा-दर्शन प्राप्त करें, यही अभीप्सा है।

श्रीनगर (कश्मीर) —शान्ति मुनि

दि. १६-६-८८

आचार्य श्री नानेश का

६६ वा जन्म दिवस

धर्म का प्रारम्भ श्रद्धा से होता है । उसका विकास धर्म सिद्धान्तो के प्रति प्रीति एवं अशुभत्व के त्याग से होता है । धर्म के प्रति प्रीति-अनुराग अन्तरग से होना चाहिये ।

धर्म के प्रति आन्तरिक श्रद्धापूर्ण प्रीति ही धर्माचरण मे रुचि जागृत कर देती है । फिर उपासना जीवन्त–प्राणवान बन जाती है । और तन-मन धर्म क्रियाओ मे सराबोर हो जाते हैं ।

यह कभी भी न भूले कि अपने भविष्य का निर्माण आप स्वय करते हैं। अपना भाग्य और कोई भी बिगाडता-बनाता नही है। आप स्वय ही अपने विधाता हैं।

किसी ईश्वरी शक्ति पर अपने भाग्य को मत छोड़ो और बुरे भाग्य पर न किसी को दोष दो। तुम स्वय अपने भाग्य के निमित्त और प्रेरक हो। सदा सत्कर्म करो तुम्हारा भाग्य जाग उठेगा।

सच्चा ज्ञान वह है जो व्यक्ति को 'अह' से ऊपर उठाकर आत्मोपम्य की भावना को जागृत करता हो, वन्धनो से मुक्त होने की प्रेरणा देता हो।

चूंकि आधुनिक विज्ञान इस सवेदनशीलता को नहीं बढाता है, 'अह' को नष्ट नही करता है, केवल क्षुद्र स्वार्थी दृष्टि का विकास करता है, मतः वह सच्चे ज्ञान की कोटि मे नही आता है।

बाहर की आंखों से ही मत देखो, जरा अन्दर की आखो से भी देखने का प्रयास करो। यदि अन्तर्चक्षु खुल गए तो बाहर के सभी रूप-सौन्दर्य एक दम फीके लगने लगेंगे। किन्तु अन्तर्चक्षु तभी खुलेगे जबकि बाह्य दृष्टि से उपशम प्राप्त हो जाएगा।

बाहर की आखो से ऐश्वर्य दिखाई देता है, किन्तु अन्दर की आखो से ईश्वरत्व के दर्शन होगे। ऐश्वर्य अस्थाई है नाशवान् है, जबकि ईश्वरत्व अविनाशी है। नाशवान को नही अविनाशी को देखो, वही स्थाई आनन्द प्राप्त होगा।

सुखी जीवन की कुंजी है निष्पाप जीवन। जीवन मे पाप भावना का प्रवेश ही व्यक्ति को भय-आतक और तनावो से भर देता है।

जरा अपनी भावनाओ को निर्मल, सरल, सहज बनाकर तो देखो, वे निश्छल भावनाए ही आपके चित्त को एक अज्ञात आतक से मुक्त करके आनन्द से भर देगी।

यदा-कदा एकान्त के क्षणो मे अपने मन को जांचते-परखते रहो कि वहा कही कोई कुसंस्कार तो अपना घर नही बनाने लगे हैं ? वासना के कीटाणु तो कुलबुलाने नही लगे हैं ? भय और अवसाद की गन्दगी तो वहा नही जम रही है ?

जैसे प्रत्येक रविवार को दुकान की सफाई कर लेते हो वैसे ही कम से कम सप्ताह मे एक बार मन की भी सफाई कर लिया करो । अन्दर मे एकत्रित होने वाली सडान्ध कही गहरी जडें नही जमाले ।

(८)

जरा शान्त मस्तिष्क से सोचो कि यदि ससार दु खपूर्ण एवं कर्मबन्धन कराके आत्मा को मलिन बनाने वाला नही होता तो तीर्थंकर इसे क्यो छोडते ?

वास्तव मे ससार के विषयो मे सुख है ही कहा ? जिसे सुख मान रहे हो वह आत्मा को दु खो के सागर मे डुबो देने वाली खतरनाक साजिश है । बचालो अपने आपको इससे ।

जब तक जन्म और मरण है दुःखो से पूर्ण मुक्ति नही हो सकती है। अतः यदि दुःखो से सर्वथा मुक्त हो जाना चाहते हो तो सम्यक् चारित्र का ऐसा पुरुषार्थ करो कि पुनःजन्म ही नही लेना पड़े।

वास्तव मे मानवीय प्रज्ञा का सही उपयोग इसी में निहित है कि वह सदा-सदा के लिये जन्म-मरण से मुक्ति के पुरुषार्थ के प्रति समर्पित हो जावे।

धर्म साधना की प्रक्रिया दो प्रकार की होती है—एक मे पुण्य बध की प्रमुखता होती है और दूसरी मे पाप कर्मो का क्षय । पुण्य कर्म भौतिक सुख के निमित्तक होते हैं, जबकि पापो का क्षय आत्मशुद्धि और आत्ममुक्ति का प्रेरक होता है, अत पुण्य बध पर नही, कर्म निर्जरा पर अधिक ध्यान दो ।

आत्मा विशुद्ध होती है, कर्मो के क्षय से । जब आत्मा पर से आठों कर्म हट जाते हैं, तो आत्मा मे अनन्त ज्ञानादि आठ विशिष्ट गुण प्रकट हो जाते हैं । आत्मा सदा-सदा के लिये अजर-अमर आनन्दमय बन जाती है ।

धर्म आचरण को अर्थ-काम की तृप्ति का साधन ही मत बनादो, वह तो परम मुक्ति का द्वार खोलने वाला तत्त्व है ।

जीवन का उद्देश्य धन नहीं, धर्म होना चाहिये, भौतिक सुख नही, मुक्ति होना चाहिये । धर्म का उपयोग आत्म कल्याण के लिये ही करो ।

धर्म ग्रन्थो की सत्यता-असत्यता की परख हमारी स्थूल बुद्धि नहीं कर सकती है, उसके लिये सूक्ष्म बुद्धि, प्रबुद्ध प्रज्ञा चाहिये। उसके बिना हम शास्त्रो को असत्य ठहराकर अपनी उथली बुद्धि का ही परिचय देते हैं।

निपुण प्रज्ञा अथवा सूक्ष्म बुद्धि भी यदि आग्रह-दुराग्रह मुक्त नही है तो आगमो का सही रहस्य प्राप्त नही कर सकती है, विपरीत इसके धर्म श्रद्धालुओ को वाद-विवाद मे उलझा देती है।

यदि जीवन में शान्ति-आनन्द चाहते हो, तो पापो से बचो और पापो से बचना चाहते हो, तो परलोक को सामने रखो ।

'मुझे यहा से मरना है और परलोक मे जाना है' यह आस्था ही व्यक्ति को वहुत से पाप कर्मों से वचा देती है । अत पुनर्जन्म पर आस्था रखो ।

अज्ञानता का स्वीकार ज्ञान की आधारशिला है। जो व्यक्ति अपने आपको अधिक बुद्धिमान मानता है, वह कभी भी ज्ञान प्राप्ति की भूमिका का निर्माण नही कर सकता है।

पागल व्यक्ति स्वयं को पागल नही मानता वह अपने आपको बहुत समझदार मानता है, जबकि समझदारी उसके निकट ही नही फटकती है। वैसे ही मूर्ख व्यक्ति अपने आपको अधिक विद्वान मानता है, जबकि विद्वत्ता का उससे सूर्य और अन्धकार जैसा सम्बन्ध होता है।

यदि जीवन में शान्ति-आनन्द चाहते हो, तो पापो से बचो और पापो से बचना चाहते हो, तो परलोक को सामने रखो ।

'मुझे यहा से मरना है और परलोक मे जाना है' यह आस्था ही व्यक्ति को बहुत से पाप कर्मों से बचा देती है । अत पुनर्जन्म पर आस्था रखो ।

धर्म तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुस्यूत होना चाहिये। जीवन के प्रत्येक कर्म मे–प्रत्येक श्वास मे धर्म अनुगुञ्जित होना चाहिये ।

धर्म का सम्बन्ध केवल मन्दिर, उपाश्रय, गुरुद्वारा, गिरजाघर या मस्जिद से ही नही है। उसका सीधा सम्बन्ध घर, दुकान, बाजार एव परिजनो के बीच के व्यवहार से होता है । वहा यदि धर्म का जीवन्त प्रभाव नही है तो मन्दिर या उपाश्रय वाला धर्म केवल ढोग बनकर रह जाता है ।

आत्मा के विकारी स्वरूप का चिन्तन भी हमे एक दृष्टि देता है, किन्तु वह चिन्तन ही पर्याप्त नहीं है। आत्मा के वीतरागी स्वरूप का चिन्तन करिये और उसे प्राप्त करने का सकल्प करिये।

आत्मा को अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न वीतरागता का भावपूर्ण चिन्तन यदि दीर्घजीवी बना रहे तो हमारे मन मे उस ऐश्वर्य-वीतराग-भाव को प्राप्त करने की तीव्र आकाक्षा उत्पन्न होगी, जो एक साधक के लिये आवश्यक है।

किसी भी पदार्थ की अच्छाई को जाने बिना उसे कैसे पसन्द किया जा सकता है, कैसे मागा जा सकता है ? इसी प्रकार मोक्ष को जाने बिना उसे कंसे पसन्द करेंगे ? अतः वीतराग वाणी मे तन्मय होकर मोक्ष के स्वरूप को जानो–समझो।

यदि मोक्ष का स्वरूप अच्छी तरह समझ में आ गया तो फिर ससार के सभी सुख फीके-तुच्छ और निस्सार लगेगे। फिर तो साधना की ऐसी रुचि जागृत होगी कि मोक्ष के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नही लगेगा।

ससार क्या है ? आत्मा का कर्मों के साथ वन्धे रहना–जन्म मरण करते रहना। और मोक्ष क्या है ? कर्मो के वन्धन से आत्मा का मुक्त हो जाना। यही तो मुक्ति या निर्वाण है।

जोवन मे यदि कुछ करने योग्य है, तो यही कि आत्मा के ऊपर लगे कर्म मैल को साफ करते जाओ, आत्मा को निर्मल वनाते जाओ। यही परम एव परम कर्त्तव्य है–करणीय है।

सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये किसी जप-तप, मंत्र-तंत्र, होम-हवन या किसी मनौती की आवश्यकता नहीं है; उसके लिये केवल प्रामाणिकता एवं व्यावहारिकता की आवश्यकता है।

यदि आप मानसिक शान्ति से युक्त आनन्द की जिन्दगी जीना चाहते हैं तो पैसो को नहीं प्रामाणिकता को महत्त्व दो। प्रामाणिक व्यक्ति अर्थाभाव या कम आय में भी मानसिक शान्ति का अहसास करता है।

स्मरण रखो भावना शून्य विद्वत्ता आन्तरिक आनन्द नही जगा सकती है। तुम यदि आनन्दित प्रसन्नचित्त रहना चाहते हो तो विद्वत्ता के साथ भावना को महत्त्व दो।

विद्वत्ता से अच्छा प्रवचन देकर लोगों को प्रभावित तो किया जा सकता है किन्तु उनके हृदय को प्रेम से-सहृदयता से आप्लावित करके बदला नहीं जा सकता, अत. विद्वत्ता के साथ भाव विशुद्धि का महत्त्व स्वीकार करो।

मर्यादा विरुद्ध कार्य मन को सदा आशंकित एवं भयभीत बनाए रखते हैं। व्यक्ति ऐसे कुकृत्य करके न तो चैन से सो पाता है–जो पाता है और न मन को स्वस्थता पूर्वक धर्म में स्थिर कर पाता है।

किसी भी प्रकार के आवेश मे किया गया असत्कार्य बुरी यादो की एक लम्बी कतार छोड जाता है, जो एक शूल की तरह निरन्तर चुभन पैदा करते रहती है।

आत्म निष्ठ होने के लिये निन्दा और विकथा का त्याग अनिवार्य एव प्रथम शर्त है । असत् से वच कर ही सत् मे प्रवृत्ति की जा सकती है ।

यदि आत्म निष्ठ होना चाहते हो, तो वाह्य आकर्षणो का व्यामोह छोड दो । वाह्य सज्जा से मुंह मोड दो ।

मर्यादा विरुद्ध कार्य मन को सदा आशंकित एवं भयभीत बनाए रखते हैं। व्यक्ति ऐसे कुकृत्य करके न तो चैन से सो पाता है--जी पाता है और न मन को स्वस्थता पूर्वक धर्म मे स्थिर कर पाता है।

किसी भी प्रकार के आवेश में किया गया असत्कार्य बुरी यादो की एक लम्बी कतार छोड जाता है, जो एक शूल की तरह निरन्तर चुभन पैदा करते रहती है।

आत्म निष्ठ होने के लिये निन्दा और विकथा का त्याग अनिवार्य एव प्रथम शर्त है। असत् से वच कर ही सत् मे प्रवृत्ति की जा सकती है।

यदि आत्म निष्ठ होना चाहते हो, तो वाह्य आकर्षणो का व्यामोह छोड दो। वाह्य सज्जा से मुंह मोड दो।

अनैतिकता एव धार्मिकता का मेल कभी नही बैठ सकता। धार्मिकता के साथ तो नैतिकता-प्रामाणिकता का ही मेल हो सकता है।

आप बेईमानी भी करते रहे और धार्मिक भी हो जाए ये दोनो कार्य कैसे हो सकते है ? धार्मिक बनना है—अहिंसक बनना है तो पहले प्रामाणिक बनिये।

बुद्धिमान व्यक्ति को तर्क और प्रेम से ही समझाने का प्रयास करो। क्रोध से तो उसे विद्रोही ही बनाया जा सकता है।

बुद्धिमान क्या, बुद्धू मूर्ख व्यक्ति को भी तो क्रोध से नही समझाया जा सकता है। क्रोध समझाने का मार्ग है ही नही, समझाइस तो प्रेम से ही हो सकती है, यदि वह बुद्धिमान के लिये हो या मूर्ख के लिये।

मोक्ष का सुगम पथ उन लोगो को प्राप्त नहीं हो सकता है, जो व्यसनो के गुलाम फैसन के दीवाने एव अन्धानुकरण की अन्धी गलियो मे भटक रहे हो। वासनाओ मे आकण्ठ डूबे हुए ऐसे व्यक्ति तो मोक्ष मार्ग को समझ ही नहीं सकते हैं।

जब तक दृष्टि वासना अथवा इन्द्रियाकर्षण से अलग नहीं हट जाती, जीवन विकारो के दल-दल से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक मुक्ति मार्ग की ओर चरण नही बढ़ सकते। यदि वास्तव में आत्मिक आनन्द की अभीप्सा है तो बाहर की इस दौड़ से बचने का प्रयास करो।

मोक्ष का सुगम पथ उन लोगों को प्राप्त नहीं हो सकता है, जो व्यसनो के गुलाम फैसन के दीवाने एव अन्धानुकरण की अन्धी गलियो मे भटक रहे हो । वासनाओ मे आकण्ठ डूबे हुए ऐसे व्यक्ति तो मोक्ष मार्ग को समझ ही नहीं सकते हैं ।

जब तक दृष्टि वासना अथवा इन्द्रियाकर्षण से अलग नहीं हट जाती, जीवन विकारो के दल-दल से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक मुक्ति मार्ग की ओर चरण नही बढ सकते । यदि वास्तव में आत्मिक आनन्द की अभीप्सा है तो बाहर की इस दौड़ से बचने का प्रयास करो ।

बुद्धिमान व्यक्ति को तर्क और प्रेम से ही सम-
झाने का प्रयास करो । क्रोध से तो उसे विद्रोही
ही बनाया जा सकता है ।

बुद्धिमान क्या, बुद्ध मूर्ख व्यक्ति को भी तो
क्रोध से नहीं समझाया जा सकता है । क्रोध सम-
झाने का मार्ग है ही नही, समझाइस तो प्रेम से
ही हो सकती है, यदि वह बुद्धिमान के लिये हो या
मूर्ख के लिये ।

साधुत्व की प्रथम शर्त है 'संवेदनशीलता-आन्तरिक करुणा ।' यदि साधु के अन्तरंग से करुणा का स्रोत नही बहता है तो वहां साधुता नहीं । साधुत्व का आचरण मात्र है ।

साधुत्व की दूसरी शर्त है जागरूकता, साधना के प्रत्येक चरण पर जागृत व्यक्ति ही आत्मा की गहराई मे घुस पैठ कर सकता है ।

आंखो देखी और कानों सुनी बात पर भी जल्दबाजी मे कोई निर्णय मत करो। किसी भी महत्त्वपूर्ण निर्णय के लिये बहुत गहराई से सोचो। उसकी खूब जाच पडताल करो और निर्णायक स्थिति में भी कोई कठोर, निर्दयी निर्णय मत करो।

किसी भी महत्त्वपूर्ण विषय पर निर्णय लेने के लिये सहसा किसी के कथन पर विश्वास मत करलो। अपने एकान्त के क्षणो में दस मिनिट का ध्यान करो, अपनी अन्तरात्मा की आवाज के आधार पर निर्णय लो—वह निर्णयसमुचित मार्ग दर्शक होगा।

गुणवान् होना कठिन नही है, किन्तु गुणानुरागी होना अत्यन्त कठिन है। हम गुणवान् बनकर दूसरों की प्रशंसा के पात्र बन जाते हैं, किन्तु दूसरो को गुणवान् देखकर उनकी प्रशसा कर देना हमारे लिये कठिन हो जाता है।

यदि तुम वास्तव में गुणवान् बनना चाहते हो तो पहले गुणानुरागी बनो, गुणवानो के गुणो की प्रशसा करना सीखो। यही नही, दुर्गु णी व्यक्ति के जीवन से भी किसी न किसी अच्छाई—गुण की खोज करो।

किसी को दोष मत दो कि 'तुमने मुझे दुःखी कर दिया'। वास्तव में हम अपने कर्मों के फल से ही दुःखी होते हैं। दूसरा तो उसमें सामान्य निमित्त मात्र है।

कर्म परिणति पर गहन विचार करने पर दुःखों का सहन करना सरल हो जाता है और नये कर्म बन्धन बहुत कम होते है। अतः जब भी दुःखों से घिर जाओ कर्म सिद्धान्त पर चिन्तन करो।

गुरु-शिष्य, भाई भाई अथवा मैत्री के अच्छे सम्बन्धो का सेतु अत्यन्त कठिनाई से बनता है, अतः इसे सामान्य-से झटको से मत तोडो। इन सम्बन्धो की महत्ता एवं मूल्यवत्ता समझकर इन्हे स्थायित्व देने का प्रयास करो।

पारस्परिक सम्बन्धो को मर्यादाओं, उनके औचित्य को समझो। उन्हे निभाने के लिये अपने स्वार्थों को आडे मत आने दो।

सन्त पुरुषो अथवा सद्‌गुरुओ का परिचय उनके ज्ञान, उनकी करुणा एव उनके आचरण-चारित्र से ही प्राप्त किया जा सकता है।

सद्‌गुरुओ की सच्ची और सहज पहचान उनकी कथनी और करणी की एक रूपता से हो सकती है– उनके भीतर की करुणा-दयालुता से हो सकती है।

किसी को यह जताने का प्रयास मत करो कि मैंने तुम्हारे लिये यह किया है, या मैं तुम्हारे लिये यह कर रहा हू'। अन्यथा तुम्हारी आत्मा कर्तृत्व के अहकार मे दब जाएगी।

कर्त्तृत्व भाव का झूठा अहं आगे के विकास को ही नही रोकता, वडे-वड़े व्यक्तियो को भी साधना की उच्च भूमिका से नीचे गिरा देता है।

हम जो कुछ देखते हैं, सुनते हैं, पढते हैं अथवा चिन्तन करते हैं, उसका प्रभाव सूक्ष्म रूप से हमारे पूरे व्यक्तित्व पर पडता है ।

यह प्रयास करो कि तुम सदैव अच्छा देखो, अच्छा पढो, अच्छा सुनो और अच्छा ही चिन्तन करो ताकि तुम्हारा व्यक्तित्व अच्छाइयो का कोष वन जाए ।

याद रखो, अन्याय से कमाया हुआ धन आपको शान्ति से जीने नही देगा। आपको सुख से—चैन से सोने नही देगा। मखमल एव डनलप के गद्दे पर भी अशान्ति–बेचैनी आपका पीछा नही छोडेगी। एयर कण्डीशन बगला भी आपको रात-दिन अशान्ति तनाव की आग मे जलाता रहेगा।

आज तो हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था ही बड़ी पेचीदी हो गई है, उलझन भरी हो गई है। जिस कदर सरकार नये-नये टैक्स लगाती है, उसी कदर नये-नये तरीको से टेक्स चोरिया होती हैं और समझदार लोग भी टेक्स-चोरी को अपराध नही मानते।

कोई भी पदार्थ या व्यक्ति अच्छे-बुरे नही होते है और न वे हमारे भीतर राग-द्वेष उत्पन्न कर सकते हैं । उनमे अच्छाई-बुराई का आरोप हमारा मन करता है । विकारग्रस्त मन ही राग-द्वेष के ताने-बाने बुनता है, व्यक्ति और पदार्थ तो निमित्त मात्र होते हैं ।

यदि आप वीतरागी बनना चाहते हैं, तो पदार्थों मे अच्छे-बुरे का भाव नही देख कर पदार्थत्व का दर्शन करो । व्यक्ति मे अच्छाई-बुराई न देखकर व्यक्तित्व का दर्शन करो समत्व दृष्टा बनो ।

किसी से मागने पर भी यदि वह कुछ नही देता हो, तो उस पर क्रोध मत करो। अपने 'लाभान्तराय' कर्मोदय पर चिन्तन करो ।

उपलब्धि का आधार पुरुषार्थ तो है ही, साथ मे अन्तराय कर्म का क्षयोपशम भी है। अत अनुपलब्धि पर हतोत्साहित न होकर दुगुणे वेग से पुरुषार्थ प्रारम्भ करो ताकि अन्तराय कर्म क्षय हो और उपलब्धि के द्वार खुल जावें ।

तुम जैन हो, अपने दायित्व को समझो कि जिन शासन की रक्षा के लिये तुम्हारे क्या कर्त्तव्य है ? वह कर्त्तव्य केवल लच्छेदार भाषण दे लेने से या कुछ लेख लिख देने मात्र से पूरा नही हो जाता है । उसके लिये पहले अपने भीतर शुद्ध एव सुदृढ श्रद्धा जगाओ और अपने आचरण को सुधारो ।

व्यापार करते समय इतना तो अवश्य ध्यान रखो कि "मैं जैन हूं, मुझे ऐसा कोई व्यवसाय नही करना चाहिये जो जैनत्व से विरुद्ध हो, जिससे जैन धर्म बदनाम होता हो ।"

छल-कपट एव धोखा-धडी करने वाला यहां तो दु खी होता ही है, मरकर भी उसे प्राय पशु-योनि मे जाना पडता है जहा उसके चारो ओर दु ख के जाल बिछे रहते हैं।

छल-कपट करने के पूर्व इतना सा चिन्तन अवश्य करो कि यदि मेरे साथ भी कोई यही व्यवहार करे तो मुझे कितना दु.ख होगा ?

यदि तुम पर दु:ख के पहाड भी टूट पड़े हो, तो भी प्रयास यह करो कि उन्हे समभाव से सहन किया जा सके, क्योकि हाय-हाय या विलाप करने से दु.ख कम नही हो जाते है, विपरीत वे अधिक ही बढ़ेंगे ।

समता भाव से सहन किये गये दु:ख असाता वेदनीय कर्मों की निर्जरा के हेतु बन जाते है, जबकि आर्त्तध्यान करने से कर्म बन्धन बढते जाते है, जो नये दु:खो को जन्म देते है ।

नारी शक्ति रूपा है । एक ऐसी शक्ति जो पुरुष को देवता भी बना सकती है ओर यदि गिराने मे निमित्त बने तो शैतान या हैवान भी बना सकती है ।

नारी मे वह मातृत्व छुपा है जो सन्तान को महान भी बना सकता है और हैवान भी । शक्ति का सम्यगुपयोग ही कार्य की महानता का निमित्त-भूत आधार होता है ।

यदि मृत्यु से निर्भय वनकर उसे महोत्सव वनाना चाहते हो तो निम्न वातो का ध्यान रखो—

(१) जीवन की अन्तिम घडियो मे उद्विग्न मत वनो।
(२) धैर्य मत खोओ। (३) दु खी मत वनो।
(४) सावधान रहो।
(५) कर्मफल पर एव निमित्त कारण पर विचार करो।
(६) अपने पापो की शुद्ध हृदय से आलोचना करो।
(७) समस्त प्राणियो से क्षमा याचना करो।
(८) अठारह पापो का त्याग करो।
(९) अरिहन्त, सिद्ध-प्रभु, साधु और धर्म इन चार का शरण स्वीकार करो।
(१०) समस्त वैर भाव को भुलाकर अपूर्व क्षमा धारण करो।
(११) प्रत्येक श्वास के साथ नमस्कार महामन्त्र का स्मरण जोड दो।
(१२) चौबीस तीर्थंकर भगवन्तो के ध्यान मे या आत्मा की अविनाशिता के चिन्तन मे खो जाओ।
(१३) समस्त ममत्व का परित्याग कर दो॥

जैन श्रमण परम्परा की एक बहुत बडी उदारता-पूर्ण विशेषता रही है कि उसमे अन्य धर्मों-दर्शनो के अध्ययन की परम्परा रही है—आज भी है। जवकि अन्य किसी धर्म के साधको मे जैन धर्म के अध्ययन की परम्परा है ही नही।

ऐसी गुणग्राही-उदार एव व्यापक दृष्टि भी सभी की नही वनती कि अच्छाई जहा कही भी हो, अपनाली जाय। अन्यथा जैन तत्वज्ञान की अमूल्य थाती से आज कोई भी धर्म वञ्चित नही रहता।

इस बात के लिये सदा सतर्क रहो कि पाप के कार्यों के प्रति तुम्हारे मन मे सदा पश्चाताप होता रहे, और कोई भी पाप तीव्रतम आसक्ति-कषायो के साथ न हो । कम से कम पाप को पाप तो समझते ही रहो ।

जब कभी जीवन मे प्रमादवश अनपेक्षित पाप हो जाय, तो दु ख अनुभव करो । पाप करके हर्षित नही बनो ।

जिसके हृदय मे करुणा के झरने बहते हो, जिसके अन्दर से वैर की आग शान्त हो चुकी हो और जो स्नेहिल भावना से भरा हो, उसके निकट आने वाला क्रूर हिंसक प्राणी भी अहिंसक वन जाता है, निर्दयी मनुष्य भी वैर भूल जाता है ।

अपने भीतर क्रूरतापूर्ण अशुभ विचारो का सृजन करके हम अपना ही नुकसान नही करते हैं, अपने परिपार्श्व को भी क्रूर वनाते हैं। अपने सम्पर्क मे आने वालो को भी निर्दयी वनाकर उनका भी अहित करते हैं ।

वासना के नशे में पागल बना व्यक्ति कभी भी सन्तुलित एव स्वस्थ चिन्तन नही कर सकता है । उसके विवेक का दीपक बुझ जाता है और फिर वह वासना के आवेग मे इज्जत-प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा सब कुछ भूल जाता है ।

दुराचार एवं व्यभिचार के मार्ग पर चलकर व्यक्ति स्वय का ही नुकसान नही करता दूसरो की जिन्दगी को भी बरबाद कर देता है । यही नही अनेको बार एक व्यक्ति का दुराचार हजारों प्राणियों का सहारक हो जाता है । बचालो अपने आपको इस कुपथ से ।

जैसे नशीले पदार्थों का सेवन मस्तिष्क की तन्त्रिकाओ का प्रभावित करता है और व्यक्ति हिताहित का विवेक खो बैठता है। ठीक इसी प्रकार राग-द्वेष एव मोह ममता का नशा हमारी भाव तन्त्रिकाओ को सवेदन शून्य बना देता है, इस नशे में आत्मा के हिताहित का भान खो जाता है।

बाह्य नशे से जितनी हानि नही होती है उतनी अन्दर के नशे से होती है। अपनी आत्मा को राग-द्वेष मोह-विकार के नशे से बचाए रखने का प्रयास करो।

जिसे बाहर मे रहने को घास-फूस की झोपडी भी नसीब न हो उसे जेल की कोठरी ही महल लगती है। जिसे बाहर मे खाने को एक दाना भी ना मिले उसके लिये जेल की रोटियां भी स्वादिष्ट मिष्ठान बन जाती है।

वस्तु के अभाव मे अथवा उसकी अनुपलब्धि मे उसका मूल्य बढ जाता है, उसकी सम्यगुपयोगिता का बोध होता है।

धर्म आराधना से धन-वैभव, सुख-भोग, भौतिक ऐश्वर्य, स्वर्ग एव मोक्ष सभी कुछ प्राप्त होते हैं, किन्तु तुम धर्म से भूल कर भी सासारिक वैभव मत मागना, क्योकि यह बहुत घाटे का सौदा होगा।

धर्म की शक्ति अचिन्त्य है। उसे भौतिक कामनाओ मे खो देना बुद्धिमत्ता कैसे मानी जा सकती है। एक लाख रु० से एक साधारण-सा एक रुपये का दर्पण खरीद लेना क्या बुद्धिमत्ता का प्रतीक माना जा सकता है ?

आज विवाह--शादी जैसी सामाजिक परम्पराए इतनी विकृत हो गई है कि जवान पीढी रूप-चमडी-सौन्दर्य के पीछे पागल बनी जा रही है तो बुजुर्ग पीढी पैसे को ही भगवान् मान रही है। इस घिनौनी दौड ने न जाने कितनी बालाओ को मरने के लिये विवश कर दिया है ?

क्या उन व्यक्तियो को धार्मिक माना जाय जो रूप और पैसो से ही सौदा करते हो, विवाह शादियो मे उसी को महत्त्व देते हो ?

आज की फैशन परस्ती ने धर्म स्थानो की मर्यादाए भी तोड कर रख दी है। धर्म स्थान भी जैसे 'फैशन शोरूम' बन गए हो। प्रवचन स्थल प्रदर्शन स्थल बन गये हो।

ग्राज की युवापीढी मे वेश स्पर्धा, केश स्पर्धा एव सौन्दर्य प्रदर्शन स्पर्धा की होड सी लग गई है। क्या इस बहिर्मुखी स्पर्धा मे कभी धर्म रुचि भी बन सकेगी? क्या यह पीढी कभी धर्म-उपासना को भी अपनी स्पर्धा का ग्रग बनाएगी?

यदि वास्तव मे आप अपने मन को धर्म की उर्वरा भूमि बनाना चाहते हो, उसे शान्ति और आनन्द का उत्स बनाना चाहते हो, तो सिनेमा एव अश्लील नाटक देखना आज से ही बन्द कर दो।

पारिवारिक एव सामाजिक जीवन की शान्ति मे, नैतिकता एव चारित्र निष्ठा मे आग लगा देने का एक मुख्य साधन है 'सिनेमा'। इसने न जाने कितने कोमल दिमागो मे चारित्र हीनता के वीज वो दिये है, कितने के परिवार उजाड दिये है।

बहुत वार बच्चो के साथ माता-पिता का अनुचित व्यवहार उन्हे धर्म से विमुख बना देता है, उनके मन धर्म विद्रोही बन जाते हैं। अत बच्चो को धर्म के प्रति आकर्षित करने मे भी कटु–कठोर शब्दो का प्रयोग मत करो, अच्छी शिक्षा भी मधुर शब्दो मे दो।

माता-पिता के स्वय के आचरण धर्मानुकूल न हो, उनके जीवन मे धर्म केवल दिखावे की वस्तु हो तो सन्तान पर उस धर्माचरण का विपरीत असर पडे बिना कैसे रहेगा ? यदि अपनी सन्तान को धार्मिक बनाना चाहते हो तो पहले तुम आन्तरिकता पूर्वक धार्मिक वनने का प्रयास करो।

यदि कोई गर्भवती नारी अपनी आने वाली सन्तान के भविष्य को जानना चाहे तो वह बडी सरलता से जान सकती है—अपने ही तत्कालीन विचारो के आधार पर। माता के मनोभावो का सन्तान के स्वभाव पर बहुत गहरा प्रभाव अकित होता है।

यदि ससार में नैतिकता, चारित्रनिष्ठा, निर्भयता एव सज्जनता का प्रचार प्रसार करना है, तो इसके लिये किसी आन्दोलन की अथवा विज्ञापनबाजी की आवश्यकता नही है, केवल ससार की सभी माताए नैतिक चरित्रनिष्ठ एव निर्भय बन जाए – अपने भावो को पवित्र बना लें।

सासारिक प्रवृत्तियो मे भी यदि उनके औचित्य अनौचित्य का ध्यान रखा जाय और अनासक्ति का भाव रखा जाय तो वे धर्म साधना का अग बन जाती हैं।

विवाह बन्धन मे बन्धते समय भी उसे अपनी मानसिक दुर्बलता-विवशता मान कर अन्तरग मे सयम साधना का पुनीत लक्ष्य रखा जाना चाहिये।

संस्कृत की एक सूक्ति है "अधीत्य ग्रन्थापि भवन्ति मूर्खा ।" पढ लिख कर भी व्यक्ति मूर्ख रह जाता है । और समाज मे आज ऐसे पढे लिखे मूर्खों का बाहुल्य हो गया है । वह पढाई किस काम की जिसमें मानवीय सवेदना ही समाप्त हो जाती हो ?

समाज मे आज ऐसे वर्ग की भी बहुलता होती जा रही जो श्रीमताई के नशे मे चूर है, किन्तु वास्तव मे उनके जैसे और कोई गरीब नही है । और यह वर्ग समाज को निरन्तर पतन की ओर खीचता जा रहा है ।

धन्धा करते हुए भी धर्म--पुण्य हो सकता है, यदि उसे एक निश्चित नियम बद्धता एव आचार सहिता के सशक्त पालन के साथ किया जाय ।

आज तो धर्म का भी व्यवसायी करण होता जा रहा है । धर्म क्रियाओ की काउन्टिग करके उन्हे निश्चित फलश्रुति के साथ जोडना व्यवसायी करण नही तो और क्या है ?

विजातीय आकर्षण..............................
यो तो अनादिकालीन समस्या है, किन्तु आज के वातावरण ने इसे अत्यन्त उग्र बना दिया है ।

नौकरी-पैसा नारियो मे यह स्थिति एक बदतर रूप लेती जा रही है। इसी दृष्टि से तो वे नारिया अपने पति या परिवार से भी अधिक ध्यान अपने 'बॉस' का रखती हैं ।

आज के परिवेश मे ससार के सभी कार्यों का प्राय एक ही उद्देश्य हो गया है कि पाचो इन्द्रियो के विषय सुखो की प्राप्ति कैसे हो ?

खान-पान, रहन-सहन, वेश-विन्यास सभी मे इन्द्रिय विपय सुखो के वीज खोजे जा सकते हैं। किन्तु यह एक भटकाव भरा उद्देश्य है ।

किसी व्यक्ति की रुचि अथवा आदत को बदलना चाहते हो तो उस पर क्रोध करके या झुझलाकर के वैसा नही कर सकोगे, उसके लिये स्वय को शान्त-सयत बनाए रखो और स्नेह से समझाओ।

यह सीधा सा विज्ञान है कि गर्म लोहे से गर्म लोहा नही कटता है। गर्म लोहे को काटने के लिये ठण्डा लोहा ही उपयोग मे आता है।

सामाजिक जीवन व्यवहार मे एक दूसरे पर परस्पर विश्वास, उदारता, सहनशीलता एव गम्भीरता का होना आवश्यक है। इन गुणो के अभाव मे जीवन अत्यन्त कटु हो जाता है।

आज का सामाजिक एव पारिवारिक जीवन गुणशून्य औपचारिकताओ मे उलझता जा रहा है। इसीलिये इसमे निरन्तर टूटन होती जा रही है—दरारें पडती जा रही हैं।

पति-पत्नी दोनों यदि 'क्वालिफाईड'—उच्च डिग्री धारी हो, दोनो को अपनी डिग्रीयो का अहकार हो और दोनो तेज-तर्राट हो तो सघर्ष अनिवार्य है और ऐसे जीवन मे अशान्ति एवं संक्लेश बने ही रहते है।

पति-पत्नी के सम्बन्ध खीचतान वाले नही, सौहार्द पूर्ण होने चाहिये। साथ ही धर्म आराधना मे भी एक दूसरे को सहयोग-प्रेरणा देने वाले होने चाहिये।

आजकल अभक्ष्य खान-पान ने इस तरह प्रभाव फैला दिया है कि इसमे चपरासी से लेकर मिनिस्टर तक के भेद समाप्त कर दिये हैं। शराब तो भेद की सभी दिवारो को तोड कर सभी को पागल बनाती जा रही है।

यदि तुम अपने वैयक्तिक एव पारिवारिक जीवन को सुख-समृद्धि एव मानसिक शान्ति से भर-पूर बनाए रखना चाहते हो तो स्वय को एव अपने परिवार को शराब एव मासाहार की लत से बचाए रखना ।

यदि आप गृहस्थ जीवन मे रहते हुए भी वासना पर सयम रखकर चारित्र निष्ठ बने रहना चाहते है तो निम्न नियमो का दृढता से पालन कीजिये—

(१) अपनी दृष्टि को सदा पवित्र बनाए रखो ।

(२) अश्लील सिनेमा-नाटको से परहेज करो ।

(३) परस्त्री का परिचय मत करो ।

(४) वीभत्स एवं अश्लील साहित्य मत पढा ।

(५) गन्दे चित्र-पोस्टर निर्निमेश दृष्टि से मत देखो ।

(६) रात्रि भोजन का सर्वथा त्याग कर दो ।

(७) अधिक घृष्ठ-पौष्टिक श्राहार मत करो ।

(८) व्यभिचारी स्त्री-पुरुषो के ससर्ग से बचो ।

(९) स्त्री सम्बन्धी अथवा विजातीय सैक्स की चर्चाए मत करो ।

(१०) चारित्रनिष्ठ व्यक्तियो से सम्पर्क बनाए रखो सन्तो की सगति करो ।

(११) ब्रह्मचर्य की भावनाओ को सुदृढ बनाते रहो ।

सासारिक जीवन के लिये सबसे मूल्यवान बात है—परिवार का धर्म सस्कारो से ओत-प्रोत होना एव स्नेह परिपूर्ण वातावरण का बने रहना।

परिवार मे यदि सभी सदस्यो मे परस्पर प्रेमपूर्ण वातावरण हो, एक-दूसरे के प्रति उदारतापूर्ण दृष्टिकोण हो और सहिष्णुता हो, तो वहा धर्म आराधना सहज एव निरापद रूप से हो सकेगी !!

यदि अपने बच्चो को सुसस्कारित बनाना चाहते हो, तो उन्हे नौकरानियो के भरोसे मत छोडो और नौकरो के भरोसे घर को मत छोडो ।

पूर्व जन्म के पुण्योदय से प्राप्त भौतिक सुख की प्रचुरता को देखकर फूलिये मत, क्योकि यह क्षणिक है—सारहीन है और शाश्वत आनन्द रूप आत्मीय सुख के समक्ष तुच्छ है ।

इन्द्रियो को लुभाने वाले भौतिक–पौद्गलिक सुखो से ऊपर उठने का प्रयास करते रहो । एक दिन सहज ही अविनाशी आत्मीय आनन्द प्राप्त हो जायेगा । यदि उनसे उदासीन वने रहे तो ।

आपके अच्छे सुझाव भी सभी मान ले यह आवश्यक नही है, क्योकि जिसका हृदय कठोर या पाशविक बन जाता है, तो उसे सरलता पूर्वक दिये गये अच्छे सुझाव भी बुरे लगते हैं, अस्तु ऐसे व्यक्ति पर भी क्रोध करके अपने भीतर कठोरता या पाशविकता को जागृत करना उचित नही है ।

अपनी सत्य और प्रिय बात को भी मनवाने के लिये किसी पर दबाव न डालो, उसे समझा कर यथार्थ का दिग्दर्शन मात्र करा दो ।

जहां क्रूरता एव निर्दयता का निवास हो, वहा धर्म नही रह सकता है। यदि धार्मिक बनना चाहते हो तो हृदय से दयालु एव कोमल बनो।

दयालु हृदय सवेदनशील होता है। वह दूसरो के दुःखो को देखते ही द्रवित हो उठता है। अपने दुखद क्षणो मे तुम दूसरो से सवेदना चाहते हो, तो तुम भी दूसरो के लिये सवेदनशील बनो।

अशुद्ध-वैकारिक विचारो से मलिन बने हुए हृदय मे धर्म ही नही ठहरता है तो परमात्मा का अवतरण कैसे हो सकता है । क्या गटर की नाली के बीच मे आप बैठना चाहेगे ?

यदि परमात्म भाव का जागरण करना है, अपने अतरग मे ही परमात्मा का दर्शन करना है तो, मन की वासनात्मक गन्दगी को साफ कर दो, मन को निर्मल बनादो, राग-द्वेष की गन्दी नालियो से आत्मा को बाहर निकाल दो ।

यदि तुम अभय होना चाहते हो तो अनवरत यह चिन्तन करो कि 'मेरा किसी से वैर नही है।' 'मेरी सभी प्राणियो से मैत्री है।' 'किसी से भी वैर नही है।' 'मैं मेरे प्रति अपराध करने वाले को भी क्षमा करता हू।' 'सभी प्राणी मुझे क्षमा करें।'

क्षमा का वास्तविक स्वरूप है, 'शत्रुत्व भाव को ही मिटा देना।' 'वदले की भावना को समाप्त कर देना।' स्मरण रहे वदले की भावना से वैर वढता है और स्वय मे प्रतिपल भय वना रहता है। 'सवको अभय दो, स्वय निर्भय वन जाओगे।'

आम व्यक्ति को अपनी प्रशंसा सुनना अधिक अच्छा लगता है । वह सामान्य से कार्य पर भी अपने प्रति दूसरो की यह प्रतिक्रिया सुनने को उत्सुक रहता है कि लोग सबसे अधिक मेरी प्रशसा करे ।

स्मरण रखो अपनी प्रशसा सुनने की आदत हमारे भीतर सघन अहकार को जन्म देती है और हमारे विकास के द्वार अवरुद्ध हो जाते है ।

जो भौतिक दृष्टि से समृद्ध है..........सुखी है और स्वस्थ भी है, फिर भी जीवन का सम्पूर्ण समय पापो की वृद्धि मे ही लगाता है, उसे बुद्धिमान नही कहा जा सकता है। वह तो ज्ञानियो की दृष्टि मे करुणा का पात्र होता है।

भौतिक वैभव से सम्पन्न होने पर भी जो आत्मभान नही भूलता है, सम्पन्नता—वैभव का दासवत् नही स्वामीवत् प्रयोग करता है, वही बुद्धिमान माना जा सकता है।

अपने उपकारी व्यक्ति से ही ईर्ष्या करने लग जाना या उसके प्रति द्वेष रखना, उससे घृणा करना जघन्यतम अपराध है ।

अपने उपकारी के प्रति सदा बहुमान एव स्नेह का भाव बनाए रखो, चाहे तुम उससे अधिक प्रतिष्ठित हो गए हो। उपकारी को बराबर आदर देते रहना जीवन का एक बहुत बडा गुण है और यह व्यक्ति को महान् बना देता है ।

व्यक्ति के हृदय से जब सवेदनशीलता अथवा स्नेह की धारा सूख जाती है, तो उसका जीवन, जीवन नही रहकर एक मशीन बन जाता है। चलता फिरता मानव यन्त्र—'रोबोट' ही रह जाता है।

हृदय को कभी सवेदन शून्य मत होने दो। तुम्हे दूसरो से स्नेह की अपेक्षा है, तो दूसरे भी तुमसे यही अपेक्षा रखते हैं। सदा सवेदनशील कोमल हृदय बने रहो।

अपने उपकारी व्यक्ति से ही ईर्ष्या करने लग जाना या उसके प्रति द्वेष रखना, उससे घृणा करना जघन्यतम अपराध है।

अपने उपकारी के प्रति सदा बहुमान एवं स्नेह का भाव बनाए रखो, चाहे तुम उससे अधिक प्रतिष्ठित हो गए हो। उपकारी को बराबर आदर देते रहना जीवन का एक बहुत बडा गुण है और यह व्यक्ति को महान् बना देता है।

गृहस्थ जीवन मे भी धार्मिक साधना-उपासना की जा सकती है, किन्तु वह होगी आत्म जागृति के द्वारा ही। क्योकि गृहस्थी को सुचारु रूप से चलाने के लिये पद-पद पर पाप का आश्रय लेना पडता है।

गृहस्थी का अर्थ ही है हजारो पापरूपी काटो के मध्य १०-२० धर्मरूपी फूलो का मुस्कराना–महकना। इन दस-बीस फूलो को भी बचाए रखना कठिन है, अत धर्म के प्रति सावधान रहो।

अवैध व्यापार करने वालो की जिन्दगी मे जरा अन्दर उतर कर देखो, वहा केवल अशान्ति.... बेचेनी एव परेशानिया ही अधिक दिखाई देगी। उनका पारिवारिक जीवन भी अशान्ति की ज्वाला मे झुलसता हुआ ही दिखाई देगा।

तुम्हे लगता है कि अधिक पैसे वाला अधिक सुखी है, तो जरा पूछो इन धन कुबेरो को कि वे सुख-शान्ति के सरोवर मे तैर रहे है या अशान्ति के सागर मे गोते खा रहे हैं।

गृहस्थ जीवन मे भी धार्मिक साधना-उपासना की जा सकती है, किन्तु वह होगी आत्म जागृति के द्वारा ही। क्योकि गृहस्थी को सुचारु रूप से चलाने के लिये पद-पद पर पाप का आश्रय लेना पडता है।

गृहस्थी का अर्थ ही है हजारो पापरूपी काटो के मध्य १०-२० धर्मरूपी फूलो का मुस्कराना-महकना। इन दस-बीस फूलो को भी बचाए रखना कठिन है, अत धर्म के प्रति सावधान रहो।

यदि तुम सफल व्यापारी बनना चाहते हो, तो उसकी कुंजिया समझलो—व्यापार अथवा नौकरी मे सब से महत्त्वपूर्ण बात है 'प्रामाणिकता।' प्रामाणिकता के साथ आप व्यवहार कुशल है तो आपका व्यापार सहज रूप से चलेगा।

व्यापारी में कुछ विशेष गुणो की आवश्यकता होती है, वे है—मधुर भाषण, मिलन सारिता एवं हसमुखी व्यवहार। ऐसा व्यापारी ग्राहको के मन को सन्तुष्ट करके जीत लेता है।

न्याय परायणता व्यापार-व्यवसाय की 'मास्टर की'—गुरु चावी है। आप न्याय परायण हैं या नही, इसकी जानकारी निम्न रूप से करिये—

(१) आप पदार्थों मे किसी प्रकार की मिलावट तो नही करते हैं ?

(२) आप माल कम ज्यादा तो नही तौलते है ?

(३) कम माल देकर अधिक पैसा तो नही लेते हैं ?

(४) अच्छा सेम्पल दिखाकर घटिया माल तो नही देते हैं ?

(५) अधिक व्याज तो नही लेते हैं ?

(६) किसी की अमानत तो नही हडप लेते हैं ?

(७) उधार वसूल करते हुए गरीबो को परेशान तो नही करते हो, ठगते तो नही हो ?

धर्मविहीन-दुर्व्यसनी श्रीमन्तो को अधिक महत्त्व एव सामाजिक प्रतिष्ठा देकर सामाजिक मूल्यो का अवमूल्यन ही किया जाता है ।

आज पैसों के वर्चस्व के कारण नैतिक मूल्य गिरते चले जा रहे हैं। इसके लिये चारित्रहीन पूंजी पतियो का सम्मान जिम्मेदार है ।

यदि आपकी आवश्यकताएं सीमित हो जाए तो आप अवश्य न्याय-नीति अथवा प्रामाणिकता से अपनी आजीविका चला सकते हैं। एक महापाप से वच सकते है ।

सुविधा भोग की महातृष्णा परिग्रह की उद्दाम लालसा उत्पन्न करती है और वह लालसा इन्सान के हृदय को क्रूर-कठोर और निर्दयी वना देती है, जिससे वह जघन्य से जघन्य अपराध करने मे भी सकोच नही करता है ।

जब हम असहिष्णु बनते हैं, तो हमारी भाषा कठोर-कर्कश बन जाती है। भाषा का नियन्त्रण-संयमन समाप्त हो जाता है। शब्दो की मधुरता कोमलता नदारद हो जाती है।

सहिष्णुता धार्मिक व्यक्ति की प्रारम्भिक पहचान हैं। यदि जीवन मे सहिष्णुता नही है, तो धर्म का अवतरण नही हो सकता है।

'अहकार' और 'ममकार' दोनो ही वृत्तिया 'मैं' और 'मेरा' की भावनाओ का निर्माण करती है, जो इस चैतन्य को द्वेष और राग के वन्धन में वाध देती है ।

'मैं' और 'मेरेपन' की मुक्ति वन्धन-मुक्ति की प्रथम पायरो है । 'मैं और 'मेरा' का भाव छूटते ही विश्वात्म भाव की दृष्टि जागृत हो जाती है ।

जब हम असहिष्णु बनते हैं, तो हमारी भाषा कठोर-कर्कश बन जाती है। भाषा का नियन्त्रण-सयमन समाप्त हो जाता है। शब्दो की मधुरता कोमलता नदारद हो जाती है।

सहिष्णुता धार्मिक व्यक्ति की प्रारम्भिक पहचान है। यदि जीवन मे सहिष्णुता नही है, तो धर्म का अवतरण नही हो सकता है।

'अहकार' और 'ममकार' दोनो ही वृत्तिया 'मैं' और 'मेरा' की भावनाओ का निर्माण करती है, जो इस चैतन्य को द्वेप और राग के वन्धन मे वाध देती है ।

'मैं' और 'मेरेपन' की मुक्ति वन्धन-मुक्ति की प्रथम पायरी है । 'मैं और 'मेरा' का भाव छूटते ही विश्वात्म भाव की दृष्टि जागृत हो जाती है ।

ईश्वर से किसी भौतिक वस्तु की याचना भूल कर भी मत करो। तुम्हारी प्रार्थना के स्वर होने चाहिये—'हे प्रभो! मेरे समस्त विकार नष्ट हो जाए! मेरा मन सदा अविकारी बना रहे। मुझे शुद्ध आत्म स्वरूप का दर्शन हो, और मैं आत्मा के उस परम विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त करलूं।'

प्रार्थना एवं सकल्पो मे वह शक्ति होती है कि वे हमे तदनुरूप ढाल देते हैं। अत सदा प्रशस्त संकल्पो से मन को सजाए रखो। जीवन की सजावट संकल्पो की प्रशस्तता से ही बन सकेगी।

समाज की चली आ रही घिसी-पिटी परम्परा का विरोध करके नूतन स्वस्थ परम्परा की स्थापना करने के लिये भी सत्व-साहस चाहिये। बुझदिल व्यक्तियों के द्वारा कभी क्रांति का सूत्रपात नहीं हो सकता है।

क्रान्ति का अर्थ है—समाज को स्वस्थ दिशा देने वाली एक स्वस्थ-अहिंसक विचार सरणि। किन्तु इस विचारधारा का अनुशीलन कोई जीवट धारी फौलादी व्यक्तित्व का धारक व्यक्ति ही कर सकता है। अन्यथा क्रान्ति एक भ्रान्ति उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया बन कर रह जाएगी।

चित्रपटो मे अधिकाशतया मारधाड एवं हिंसक दृश्यो की वहुलता रहती है और उन्हे देखते-देखते आज के लोगो के दिल भी क्रूर-कठोर, निर्दयी एवं निष्ठुर होते जा रहे है। ऐसे दृश्यो को देखना छोड दो।

क्या आपके हृदय मे कभी दुखी व्यक्तियो के प्रति करुणा उमडती है ? कभी यह भाव उठा कि मैं कभी किसी को दुखी नही करूगा ? दूसरो के सुखो से ईर्ष्या नही करूगा ?

जव व्यक्ति अधिक कामभोगो मे आसक्त हो जाता है तो अपने परिजनो को ही नही, उपकारियो को भी भूल जाता है—आत्मा का तो उसे भान ही नही रहता है। यही कारण है कि मनुष्य लोक से मरकर देवलोक मे जाने वाले जीव अपने भोगो मे डूबकर पूर्व के उपकारियो का स्मरण ही नही कर पाते हैं।

भोगो की आसक्ति ही ऐसी है कि व्यक्ति उनमे भान भूल जाता है, अपने स्वय के हिताहित का बोध भी नही रहता है। इसीलिये तो कामातुर व्यक्ति को नीतिकारो ने अन्धा कहा है।

यदि आप किसी के गुणो की प्रशंसा सुनकर प्रसन्न नही होते, नाराज होते हैं या ईर्ष्या करते हैं तो समझिये आपके मन मे गुणो के प्रति अनुराग नही है, आप गुण द्वेषी है ।

जहा गुणो के प्रति अनुराग नही होगा वहा गुणो का विकास नही हो सकता है । अत. यदि तुम गुणवान्-महान बनना चाहते हो तो गुणियो को देखकर हर्षित होना सीखो—गुणियो का आदर सत्कार करो ।

यदि आप अपने परिवार के मुखिया है, तो आप मे, न्याय निपुणता, समत्व दृष्टि, उदारता, गम्भीरता एव सहन-शीलता जैसे गुणो का विकास होना आवश्यक है ।

मुखिया के आचरण का प्रभाव परिवार के सभी सदस्यो पर होता है, अस्तु मुखिया को अपने आचरण मे शालीनता बनाए रखना आवश्यक होता है ।

दुनियावी लोगो के आचरण का अनुकरण करके उसी बहाव मे बहते गए तो याद रखो पतन की गहरी खाई मे गिर जाओगे, जिसमे से निकलना अत्यन्त कठिन हो जाएगा।

यदि अनुकरण करना हो, तो अपने से महान उच्च चरित्रनिष्ठ महापुरुषो की साधनात्मक गति-विधियो का अनुकरण करो, वह तुम्हे महानता एव आनन्द की ऊंचाई तक पहुंचा देगा।

नारी का पहला कर्तव्य है कि वह अपने परिवार को उच्च-उन्नत सस्कारो से भर दे, सभी की निश्छल सेवा करके आत्मीय प्रेम की ऊष्मा पैदा करदे और इस रूप मे उसे स्वर्गीय आनन्द से भर दे ।

नारित्व का वास्तविक विकास अपने परिवार को गुण समर बनाने से ही होता है । नारी वह विधायिका शक्ति है, जो एक-दो बच्चो के माध्यम से उन्नत सस्कारो की लम्बी परम्परा खडी कर देती है ।

यह निश्चित है कि दूसरों के साथ अन्याय करने वाला व्यक्ति स्वय न्याय नही पा सकता है और वह निर्भय भी नही रह सकता है, क्योकि अन्याय के द्वारा वह अपने अनेक दुश्मन खडे कर लेता है, जिनसे उसे सदा आतकित रहना पडता है। वह सुख-चैन पूर्वक जी ही नही सकता है।

यह सदा स्मरण रखो कि यदि तुमने दूसरो के साथ अन्याय किया है तो उसे तुम्हे ब्याज सहित चुकाना पडेगा और उस समय तुम्हे पश्चात्ताप करना पडेगा।

यहा के न्याय मे भूल-चूक हो सकती है, किन्तु कर्मों के राज्य मे कही भूल नही हो सकती है। कृत-कर्मो का फल तो भोगना ही पडेगा।

हमारी चेतना मे कर्मो के सस्कार कप्यूटर मे भरे हुए मेटर के समान अकित हो जाते हैं, जो समय पाते ही बिना किसी स्विच के अपने आप फल देने लगते हैं।

निराकुल एवं चिन्ता रहित मन से धर्म साधना का कार्य हो सकता है । अत. साधना मे प्रवेश के पूर्व चिन्ताओ को दूर छोड दीजिये ।

जैन ग्रन्थों मे धर्म स्थान में प्रवेश के पूर्व निस्सही २ शब्द का उच्चारण किया जाता है, जो इस बात का द्योतक होता है कि साधना में प्रवेश के पूर्व मैं बाहर की सभी चिन्ताओ व्यवस्थाओ से मुक्त होकर आया हू–उन्हे बाहर ही छोड आया हू ।

शराब पीने वाले इस जीवन मे भी पशुवत जीवन जीते हैं और आगामी जन्म मे तो पशु या नरक के कीट बनते ही हैं ।

जान बूझ कर पागल बनना, अपनी प्रतिष्ठा पर कालिख पोतना क्या समझदारी कही जा सकती है ?

एक गलत धारणा फैलती जा रही है या कुछ नासमझो द्वारा फैलाई जा रही है कि मासाहार से ताकत बढती है। जबकि मास मनुष्य का खाद्य ही नही है।

गामा पहलवान एव प्रोफेसर राम मूर्ति जैसे व्यक्तियो ने ही नही घासाहारी व्यक्ति वाल्टेयर ने यह सिद्ध कर दिया हे कि शुद्ध शाकाहार मे जो शक्ति है, वह मासाहार मे नही हो सकती है।

आजकल लोग परिवार, रिस्तेदार या सहोदर भाई की विधवा पत्नी और उसके पितृहीन बच्चो के प्रति बनने वाले दायित्व को भूल कर उनकी उपेक्षा करके समाज सेवा मे धन खर्च करने को दौड लगाते हैं—मन्दिरो एव अन्य धर्म स्थानो मे हजारो-लाखो का दान दे देते हैं। क्या यह समाज सेवा है ? नही, कदापि नही। वहा उनकी दौड समाज सेवा के लिये नही, धर्म स्थानो मे शिलापट्ट लगा कर मान प्रतिष्ठा कमाने की रहती है।

परिजनो की या जरूरतमन्दो की सेवा, क्या समाज सेवा नही है ? क्या परिजन समाज या देश से अलग है ? किन्तु वहा नाम की भूख कहा पूरी होती है ? वहा कोई पदक या शिला लेख कहां मिलता है ?

अपने आश्रितो की तो उपेक्षा मत करो, उनके प्रति संस्कार देने के अपने कर्त्तव्य का तो बराबर पालन करो ।

माता, पिता, पत्नी, सन्तान एव नौकर—ये सभी आपके आश्रित हैं—इनकी यथोचित व्यवस्था की उपेक्षा मत करो । इन्हे धर्म–अर्थ की समुचित व्यवस्था देना परिवार के संरक्षक का नैतिक दायित्व होता है ।

सेवा करते समय अथवा किसी की सहायता करते समय यह विचार मत आने दो कि मैं उस पर उपकार कर रहा हू । ये विचार उस सेवा को निष्फल बना देंगे ।

मानवीय गुणो से सम्पन्न व्यक्ति दीन-दुखी की सेवा को अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता है ।

साधर्मी वात्सल्य एवं अतिथि सत्कार महान् पुण्य का हेतु और धर्म का निमित्त बन जाता है। इसी अतिथि सेवा के बल पर भगवान महावीर ने नयसार के भव मे सम्यक्त्व का बीजारोपण किया था और तीर्थंकरत्व की आधारशिला रखी थी।

अतिथि सत्कार का सुयोग बिना पुण्योदय के प्राप्त नही हो सकता है। जबकि आज आतिथ्य सत्कार की भावनाएं ही लुप्त होती जा रही हैं।

पूज्य पुरुषो का अनादर करके, उनके प्रति अपने कर्त्तव्यो की उपेक्षा करके कौन सुखी हो सकता है ? किसे शान्ति प्राप्त हो सकती है ?

सुखी और शान्त जीवन की आशा करते हो, तो अपने-अपने कर्त्तव्यो के प्रति जागृत रहो, उन्हे यथाशक्ति पूर्णतया निभाओ । सन्तान माता-पिता के प्रति एव माता-पिता सन्तान के प्रति अपने कर्त्तव्यो का पालन करें तो परिवार मे अशान्ति आएगी ही कहा से ?

धर्म के पादप को विकसित होने के लिये सद्-गुणो की सुदृढ भूमि चाहिये । जहा वैर विरोध एव सघर्षो के ककड़-पत्थर एव निरर्थक झाड-झंखाड नही होते ।

धर्म तो ऐसा अमृत वृक्ष है, जहां अच्छे ही अच्छे फल लगते है । वहा प्राणीमात्र को शीतल छाव मिलती है और अन्त मे मुक्ति का आनन्द उपलब्ध हो जाता है ।

हो सकता है, अभिभावक-माता-पिता सन्तान की सभी अपेक्षाएं पूरी न कर सके, तथापि सन्तान को माता-पिता की परिस्थितयो का ध्यान रखते हुए उनके उपकारो को नही भूलना चाहिये ।

अपनी आकाक्षाओ के पूरी न हो सकने मात्र से माता-पिता जैसे उपकारी को मानसिक सक्लेश पहुंचाना बहुत बडा पाप है। सन्तान माता-पिता जैसी स्थिति मे अपने आपको देखकर अनुभव करे, तो ज्ञात होगा कि विकटतम परिस्थितियो मे भी माता-पिता अपनी सन्तान की सुख-सुविधा का ध्यान कितना रखते हैं ।

वस्तु के यथार्थ बोध के बाद उस पर होने वाले राग-द्वेष अपने आप क्षीण होने लगते हैं और समत्व भाव का सहज विकास होने लगता है ।

यथार्थ बोध हमे अनेक विकृतियो से, अनपेक्षित विपत्तियो से एवं निरर्थक कर्म बन्धन से बचा देता है । अतः वस्तु तत्त्व के यथार्थ बोध के प्रति-सम्यक् ज्ञान के प्रति सजग बनो ।

मातृ-पितृ भक्त बनकर महान् पुण्य लाभ प्राप्त करने के लिये निम्न कर्त्तव्यो के प्रति जागृत रहो—

(१) माता-पिता को प्रतिदिन प्रणाम करना ।

(२) उनकी आज्ञाओ का यथाशक्ति पालन करना । एव आज्ञाओ का उल्लघन नही करना ।

(३) उन्हे समय पर वस्त्र भोजनादि की व्यवस्था देकर सुख पहुचाना ।

(४) प्रतिदिन सायकाल उनके पाव दवाना ।

(५) अशक्त होने पर उनके लिये शैया विछाना, आदि सेवा कार्य अपने हाथो से करना ।

(६) प्रत्येक कार्य मे उनकी अनुमति लेना ।

(७) यदि वे किसी अनुचित कार्य के लिये डाट दे तो भी उनके सामने बोलकर उनका अनादर नही करना ।

(८) उनकी धार्मिक भावनाओ को यथाशक्ति पूरा करने का प्रयास करना ।

(९) उन्हे सदा प्रसन्न रखने का प्रयास करना ।

वृद्धावस्था की अथवा उम्र की भी अपनी परिस्थितिजन्य मजबूरी होती है । वृद्धावस्था अथवा रोग से मजबूर माता-पिता अथवा गुरु का तिरस्कार करना, उनकी उचित व्यवस्था नही करना कहा तक उचित माना जा सकता है ? हो सकता है उपर्युक्त परिस्थितियो मे उनके स्वभाव मे चिडचिडापन आ जाये किन्तु जरा स्वय पर विचार करो कि तुम्हारा मानसिक सन्तुलन बिगड जाए, तुम पागलपन के शिकार हो जाओ और तुम्हारे साथ निरादर का भाव हो तो तुम्हे कैसा लगेगा ?

माता-पिता अथवा गुरु के परिस्थितिजन्य क्रोध अथवा चिडचिडे स्वभाव को समता पूर्वक सहन करना एव अनन्य तन्मयता से उनकी सेवा मे जुटे रहना बहुत बडा तप है । ऐसा तप पुण्यशाली विकसित चेतना वाले पुत्र या शिष्य ही कर सकते है ।

हमारे प्राय सभी धर्मग्रन्थ एक स्वर से कहते हैं कि मनुष्य जन्म महान है, तो फिर मनुष्य को जन्म देने वाले माता-पिता कितने महान् होंगे ? किन्तु सन्तान को इस महानता का कर्त्तव्य बोध तभी हो सकता है, जबकि माता-पिता सन्तान में सत्संस्कारों का आरोपण-संवर्धन करें ।

आज अधिकांश शहरी माता-पिता अपनी नौकरी में, क्लबों में या नेतागिरी में व्यस्त रहते हैं । सन्तान को न मां का दूध प्राप्त होता है, न पिता का प्यार-दुलार मिलता है, न अच्छे संस्कार प्राप्त होते हैं तो फिर वे माता-पिता किस आधार पर सन्तान के आज्ञाकारी भक्त होने की आशा कर सकते हैं ? और सन्तान भी उन पूजनीय किस आधार पर मानेगी ?

माता-पिता में कम से कम पांच गुण तो आवश्यक हैं—(१) सहनशीलता (२) स्नेहिल व्यवहार (३) समतापूर्ण व्यवहार—सभी बच्चो पर समान प्रेम (४) उदारता और (५) गम्भीरता ।

जो माता-पिता वास्तव मे बुद्धिमान् एव गुणवान् होते है, वे अपनी सन्तानो को सुसस्कारित करके सुरम्य उपवन की तरह महकने वाले बना देते हैं ।

माता-पिता अथवा अभिभावक का प्राथमिक कर्त्तव्य है कि अपने परिवार का इस तरह पोषण हो कि किसी के मन में आर्त्तध्यान या रौद्रध्यान उत्पन्न न हो और सभी धर्म संस्कारों के प्रति जागृत रह सकें।

धर्म श्रद्धा सम्पन्न विरक्ति में लीन माता भोग सुखों में दुःख एवं धर्मचिन्तन के दर्शन करती है। उसे विषयों के स्वाद में दुःख दिखाई देता है। अत अपनी सन्तान में यह त्याग के ही संस्कार डालती है।

वह विद्वत्ता किस काम की जिसके साथ स्नेह, करुणा, विनम्रता एव आत्मौपम्य की भावना का सहवास न हो ।

जिस विद्वत्ता के साथ क्रोधादि कषाये नष्ट होती जाये, क्षमादि गुणो का विकास होता जाये एव प्राणीमात्र पर आत्मीयता का भाव लहराता जाए, वही सच्ची विद्वत्ता मानी जा सकती है ।

आधुनिक परिवेश में दुराचार का बोलबाला इतना बढ़ गया है कि सदाचारी लोग हंसी के पात्र हो गये हैं, उनकी भरपूर निन्दा की जाने लगी है। और दुराचारियों की प्रशंसा होती है। उनकी सब तरफ जय जयकार हो रही है।

दुराचारों का सेवन आज फैशन बन गया है। इसीलिये तो 'नाईट क्लबों' की संस्कृति का विकास होता जा रहा है। व्यभिचार बढ़ता जा रहा है। किन्तु यह स्थिति अशान्ति को ही जन्म देने वाली है।

दोष-दुर्गुणो का नाश एव सद्गुणो का सवर्धन आत्मशुद्धि की भूमिका है—जीवन विकास की आधारशिला है ।

दुर्गुणी व्यक्तियो की सगति से बचो, सद्गुणियो के ससर्ग मे रहो, सहज ही आत्म शुद्धि की भूमिका का निर्माण होने लगेगा ।

आज की 'फाईवस्टार' एव 'क्लब' प्रधान सस्कृति मे शराब पीना एक फैशन बन गया है। जबकि यह धन के साथ स्वास्थ्य को भी खराब करती है और पूरे परिवार को सस्कार विकृति के द्वारा सकटो मे उलझा देती है।

सावधान रहो किसी भी बहाने से शराब को जीवन मे प्रवेश न दो। शराबी से किसी प्रकार का सम्पर्क मत करो, न उसके साथ मित्रता रखो। सदा प्रतिज्ञाबद्ध रहो कि 'इस बुराई को जीवन मे नही आने दूंगा।'

मानसिक तनावों से मुक्ति चाहते हो तो सज्जनों—महान आत्माओं का सम्पर्क करो—सत्संग करो, धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करो, प्रकृति की सन्निधि प्राप्त करो। एवं ध्यान योग का अभ्यास करो।

ऐसी मानसिक स्थिति का निर्माण करो जिससे [illegible] मन पर कोई [illegible] का प्रभाव ही न हो। प्रत्येक परिस्थिति [illegible] सामञ्जस्य के लिये का प्रयत्न करो।

जीवन व्यवहार को सन्तुलित व्यवस्थित बनाए रखने जैसे सामान्य धर्म के पालन किये बिना आत्म धर्म की उपासना नही हो सकती है ।

स्वय के एवं अपने परिवार के जीवन व्यवहार को सन्तुलित बनाए बिना जो विशेष धर्मों की आराधना का उपचार करते हैं वे दम्भी हैं ।

विकृत होती जा रही संस्कृति को बचाने का एक ही उपाय है – वीतराग के शासन की आज्ञाओं का अंगीकार। आज वीतराग का शासन ही एक-मात्र आधार बचा है।

व्यक्ति एक तरफ तो अति निन्दनीय दुष्कर्म करता रहे, पापों का सेवन करता रहे और दूसरी ओर धर्म की विशेष क्रिया पद्धतियो का अनुसरण करता रहे, क्या वह धार्मिक हो सकता है ? क्या वह मुक्ति का अधिकारी हो सकता है ? नही, धार्मिक बनने के लिये निन्दनीय कर्मों का त्याग करना ही पड़ेगा ।

कम से कम यह पश्चाताप तो करते ही रहो कि 'मैं जो पाप कर रहा हू, यह मुझे नही करना चाहिये । इस कार्य के द्वारा मै पाप कर्म बान्धकर अपनी आत्मा को मलिन बना रहा हू । मैं अवश्य इस पाप कृत्य को छोड दूंगा ।'

किसी का भी अवर्णवाद मत करो—निन्दा मत करो । क्योकि अवर्णवाद करने वाले मे द्वेष बुद्धि का उद्‌भव होता है, वह अपने को श्रेष्ठ एव दूसरे को नीचा दिखाने की हीन भावनाओ मे बहता रहता है ।

गुरुजनो का अवर्णवाद करने वाले और सुनने वाले महान् पाप कर्म का बन्ध करते हैं। वे अपने वर्तमान एव आगामी दोनो जीवन को नष्ट करते हैं ।

किसी के भी साथ शत्रुता न बनाओ । बन गई हो तो, उसे बढाओ नही, शीघ्र समाप्त कर दो। शत्रुता बढाने से तुम्हारा मन अशान्त बना रहेगा। तुम सदा आशकित एव आतकित बने रहोगे एव तुम धर्म साधना नही कर सकोगे ।

विचारो मे सामान्य सी उदारता लाने से तुम शत्रुत्व भाव से बच सकते हो । शत्रु को आत्मीय मित्र बना सकते हो । वह उदारता होगी सहिष्णुता-उसके अपराधो को क्षमा कर देना ।

परदोष दर्शन से बचो । क्योकि वह मोक्षमार्ग मे तो बाधक है ही, वर्तमान जीवन को भी अशान्त बना देता है ।

दूसरो के दोषो को देखने वाला व्यक्ति अन्तर्मुखी नही बन सकता है, वह अन्तर्यात्रा नही कर सकता है । उसकी दृष्टि मलिन हो जाती है ।

जहा परस्पर सहयोगात्मक जीवन होता है अथवा ऑफिस या सामाजिक कार्य क्षेत्रो मे साथ-साथ काम करना पडता है, वहा परिचय तो बढता है, किन्तु परिचय कितना करना, किस सीमा तक उसे बढाना इसकी सतर्कता आवश्यक है ।

यह नीति वाक्य सदा स्मरण रखना चाहिये कि 'अतिपरिचयादवज्ञा' । अतिपरिचय तो किसी से करना ही नही चाहिये । इससे अनेक संकटो का जन्म होता है । अतिपरिचय अपने श्रद्धेय की भी अवज्ञा करवा देता है । यह दोष-दर्शन की प्रवृत्ति भी बढाता है ।

उस परिचय से तो सदा बचे रहो जो आपके उन्नत सस्कारो को नष्ट-भ्रष्ट करे, आपके शील सदाचार पर कालिख पोते ।

वह परिचय किस काम का, जो आपके सद्-गुणो को नष्ट करे एवं आपके जीवन मे दुर्व्यसनो को वढाता जाए ।

धनवान होना उतना कठिन नही है, जितना कि गुणवान् एव चरित्रवान् होना। किन्तु आधुनिक परिवेश मे प्राय सभी धनवान् होने की दौड लगा रहे हैं और उसके लिये वे अपने गुणो और चारित्र को भी दाव पर लगा देते है।

सावधान ! धन से चारित्र को नही खरीदा जा सकता है, जबकि चारित्रवान् को आन्तरिक सम्पदा सहज प्राप्त हो जाती है, जो उसके जीवन को आनन्द से भर देती है।

आप जहा रहना चाहते हैं, पहले वहा के वातावरण का, वहा के निवासियो का एव वहा के शासक का ठीक से परिचय प्राप्त करो। उनके रीति-रिवाज एव स्वभाव की जानकारी हासिल करो, अन्यथा अनचाही विपत्तियो के शिकार हो सकते हो।

कुछ भी कार्य करने के पूर्व समय, परिस्थितियो, समाज एव आस-पास के वातावरण का मूल्याकन अवश्य करो। ताकि फिर पश्चाताप नही करना पडे।

बहुत बार जीवन में पुण्य और पाप दोनों समानान्तर रेखाओ की तरह चलते हैं—

(१) किसी को पुण्योदय से शरीर स्वस्थ मिलता है, तो पापोदय से धन-धान्य का अभाव बना रहता है ।

(२) किसी को पुण्योदय से धन-धान्य की सम्पन्नता प्राप्त होती है, तो पापोदय से शरीर रोगो का घर बना रहता है और वह वैभव का उपयोग नही कर पाता है ।

(३) किसी को पुण्योदय से निरोग तन और प्रचुर धन मिलता है, किन्तु पापोदय से परिवार में सक्लेश बना रहता है—उसे परिवार का सुख प्राप्त नही होता है ।

(४) किसी को पुण्योदय से परिवार अच्छा प्राप्त होता है तो पापोदय से धन-सम्पन्नता नही होती ।

(५) किसी को पुण्योदय से सम्पन्नता के साथ पारिवारिक सुख भी प्राप्त है किन्तु पापोदय से वह चारो ओर शत्रुओ से आतंकित बना रहता है ।

(६) किसी को पुण्योदय से शत्रु नही होते, मित्र बहुत होते हैं किन्तु पापोदय से आर्थिक एव सामाजिक परेशानिया पीछा नही छोडती ।

साधक महात्माओ की पर्युपासना-सेवा करते समय अपने स्वार्थं एव अपने कष्टो का रोना मत रोओ । न अपने सेवा भाव के अह का का प्रदर्शन करो ।

निष्काम भाव से की जाने वाली पर्युपासना जो देती है, वह कामनाओ के द्वारा प्राप्त नही हो सकता है ।

किसी भी प्रतिज्ञा के ग्रहण के पूर्व अपनी मन.स्थिति का अध्ययन अवश्य करो। अपने सकल्प की दृढता को टटोलो। निभा पाने के सामर्थ्य पर ही प्रतिज्ञा ग्रहण करो।

प्रतिज्ञाबद्ध हो जाने के बाद जरा-जरा सी मुश्किलो मे प्रतिज्ञाये तोड देना नितान्त अनुचित है। गृहीत प्रतिज्ञाओ का दृढतापूर्वक पालन करो।

किसी को धोखा देकर धन ऐंठने का प्रयास मत करो। दगा करके प्राप्त की हुई सम्पत्ति तुम्हारे पास भी टिकने वाली नही है। वह ऐसे सकट खडे करेगी कि व्याज लेकर ही जाएगी ।

अनैतिकता का उपार्जन आपको जरा सा शारीरिक सुख देकर दसगुणी मानसिक उलझनें खडी करेगा। जवकि नैतिकता का उपार्जन शतगुणी मानसिक शान्ति प्रदान करेगा ।

सभी प्रकार की यात्राओ मे सबसे महत्त्वपूर्ण यात्रा है अन्तर्यात्रा । अन्तर्यात्रा व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार का वह आनन्द देती है, जो बाहर की यात्राओ में कथमपि सम्भव नही है ।

बाहर की यात्राए बहुत करली, इस जीवन मे ही नही पूर्व के जन्मो मे भी करते रहे । एक बार अन्तर्यात्रा भी करके तो देखो । अन्तर्यात्रा का सर्व-श्रेष्ठ एव एकमात्र मार्ग है 'ध्यान' ।

परिवार, समाज, धर्म एव नगर के प्रमुख व्यक्तियो की मनोदशा अथवा उनके व्यवहारो से पूर्णतया परिचित रहो ।

जो सघ प्रमुख वीतराग वाणी के अनुसार व्यवहार करते है, उनके साथ दुर्व्यवहार करना, उनकी अवहेलना करना या उनकी आज्ञा का उल्लघन करना सर्वथा अनुचित है—अहितकर है ।

जिनेश्वर भगवन्तो किं वा तीर्थकरो के नाम स्मरण मे भी अद्भुत शक्ति छुपी है, आवश्यकता है अविचल आस्था की और सम्पूर्ण समर्पणा की ।

नाम स्मरण से तो अनेको चमत्कार घटित हो सकते हैं, किन्तु वह नाम स्मरण शाब्दिक ही न हो, उसके साथ आन्तरिक उज्ज्वल चारित्र की सुगन्ध भी हो ।

आप दूसरो की निन्दा बुराई करना बन्द कर दे, वे भी आपकी बुराई करना बन्द कर देगे। कुछ समय अवश्य लग सकता है।

हमारे मन मे दूसरो के प्रति बुरे विचार उत्पन्न होते है तो उसका प्रतिबिम्ब दूसरे के मन मे निश्चित पडता है। यदि हम अच्छे विचार ही रखते है तो प्रतिक्रिया वैसी ही होगी।

अपने पारिवारिक जीवन को सन्तुलित एवं सुखमय बनाने के लिये निम्न बातो का ध्यान रखो—

(१) अपने कर्त्तव्यो एव दायित्वो का स्वस्थ मन से निर्धारण करके उनका पालन करो ।

(२) प्रत्येक परिस्थिति मे बिना विचलित हुए अपने कर्त्तव्यो पर डटे रहो ।

(३) किसी भी कार्य मे विरोध अथवा अवरोध उपस्थित हो, तो उसे चुनौती के रूप मे स्वीकार करो ।

(४) पारिवारिक सदस्यो की त्रुटियों या कमजोरियो पर दु:खी न बनो, उन्हे मानव मन की आदत मानकर सुधारने का प्रयास करो ।

(५) अपनी वाह्य एव आन्तरिक जिन्दगी मे निश्छल-सरल वने रहो, कृत्रिमता एव कुटिलता मे दूर रहो ।

(६) अपने विचारो की अभिव्यक्ति मे भाव एव शव्द सन्तुलित वनाए रखो । शव्दो मे व्यग एव उग्रता मत आने दो ।

(७) कभी कार्य का अधिक भार आ जाए तो घवराओ नही—थको नही । सदा युवा जैसी ताजगी एव मस्ती वनाए रखो, उत्साह को कम न होने दो ।

अपने व्यक्तित्व को सामाजिक दृष्टि से व्यव-स्थित एव सुदृढ बनाना चाहते हो तो निम्न बातो पर ध्यान दो—

(१) अपने सामाजिक कर्त्तव्यो का सम्यग्बोध प्राप्त करो एव उनका प्रामाणिकता के साथ पालन करो ।

(२) किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह से ग्रसित न बनो ।

(३) किसी भी व्यक्ति के उपयोगी सुझाव को नि सकोच स्वीकार करो, चाहे वह तुम्हारा विरोधी भी क्यो न हो ।

(४) अपने कार्य क्षेत्र मे आने वाले व्यवधानो अथवा सघर्षो व्यथित न बनो, उनका डटकर मुकाबला करो ।

(५) अधिक पब्लिसिटी से दूर रहते हुए समाज के प्रत्यक्ष सम्पर्क मे बने रहो ।

(६) एकान्त स्थान के प्राप्त होते ही सामाजिक समस्याओ के समाधान पर चिन्तन करो ।

(७) अपनी आकाक्षाओ को स्वार्थ परक नही उद्देश्य परक बनाओ ।

(८) अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण करो अर्थात् अपनी क्षमता के अनुसार दायित्व अपने ऊपर लेकर उन्हे पूरा करो ।

(९) जब आपके समक्ष दूसरो की समस्याए हो, अपनी समस्याओ को विस्मृत कर दो ।

(१०) अपने अधीनस्थ कार्यकर्त्ताओ के साथ व्यवहार मे मधुरता बनाए रखो । वाणी मे कटुता मत आने दो । किसी का उपहास मत करो ।

अपने वैयक्तिक जीवन को मधुर-आनन्दमय बनाना चाहते हो तो—

(१) प्रकृति के अधिक निकट रहने का प्रयास करो। प्राकृतिक सौन्दर्य का सूक्ष्म विश्लेपण करके अपने चिन्तन को गहरा बनाओ।

(२) कृत्रिमता से यथाशक्ति दूर रहो।

(३) अधिक कोलाहलपूर्ण वातावरण से दूर रहो।

(४) अपनी प्रकृति एव प्रवृत्ति को सृजनात्मक बनाओ विध्वस के कार्यो से बचे रहो।

(५) नित नूतन भव्य निर्माण की ओर बढते रहो।

(६) अपने स्वभाव को विनोदप्रिय-हसमुख बनाओ गम्भीर से गम्भीर प्रसगो को भी अपने विनोद-प्रिय मृदुल स्वभाव से हल्का बनाया करो।

(७) किसी भी क्षेत्र मे सफलता प्राप्त करने के लिये अनैतिकता का आश्रय मत लो।

(८) किसी के साथ छल-कपट मत करो।

(९) सदैव मानवता प्रेमी बने रहो। किसी की व्यक्तिगत बुराइयो को देखकर अपने व्यवहार को उसके प्रति कटु मत बनाओ—अपना स्नेह कम मत करो।

(१०) अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अनैतिकता के साथ गठबन्धन अथवा गन्दी सोदेबाजी मत करो।

(११) अपने मनवाणी ओर कर्म के व्यवहार को सन्तुलित बनाए रखो, उसमे विषमता मत आने दो।

जिन परिजनो के साथ जीना है, जीवन की यात्रा पूरी करनी है, जो हमारे साथी-सहयोगी हैं, उनके साथ किया गया दुर्व्यवहार हमे लम्वे समय तक तनावग्रस्त वना देगा।

निरन्तर—हर घडी साथ रहने वालो को दु खी करके आप शान्तिपूर्वक नही रह सकेंगे। अत. अपने आस-पास प्रेम-स्नेह एव सौहार्द्र की वाड लगाइये, जिसमे आपके जीवन की शान्ति हरी-भरी वनी रहे।

मन मे जरा-जरा-सी बाते पर होने वाले उतार-चढाव से बचना हो, विषम चिन्तन से ऊपर उठना हो तो कर्म सिद्धान्त पर गहन चिन्तन करो। 'कर्मफिलोसोफी' की सूक्ष्म जानकारी के बाद क्षण-क्षण मे उठने वाले राग-द्वेष के भाव अपने आप कमजोर होने लगेंगे।

कर्म सिद्धान्त का परिज्ञान हमे राग-द्वेष से तो बचाता ही है, सत्पुरुषार्थ की भी प्रेरणा देता है। क्योकि सत्पुरुषार्थ ही कर्मक्षय का निमित्त बनकर मुक्ति के द्वार तक पहुचा देता है।

यदि आपके पूर्वजो के द्वारा कुछ ऐसी परम्प-राएं डालदी हो जो वर्तमान परिवेश मे सर्वथा अनुपयोगी ही नही, हानिकर भी हो गई हो, तो उन लोक विरुद्ध एव धर्म विरुद्ध परम्पराओ को तोडने का साहस करना चाहिये ।

कुछ परम्पराए समय सापेक्ष होती हैं, जो द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि परिस्थितियो से जन्म लेती हैं । द्रव्य-क्षेत्र एव काल के परिवर्तन के साथ ही वे अनुपयोगी हो जाती हैं ।

प्रत्येक विवादत्मक स्थिति का सामना नही किया जाता । कभी-कभी समझौतावादी दृष्टिकोण भी अपनाना पडता है ।

अनेको वार दूसरो को समझाने की वजाय स्वयं को ही समझना पडता है । यही तो जैन दर्शन का सापेक्षवाद है ।

आपके जीवन मे जब कभी विपत्ति आए, सकटा-पन्न स्थिति उपस्थित हो, आप अपने ही कर्मो का पर्यावलोकन करें। क्योकि विपत्ति और सकटो के बीज तो आपके द्वारा ही अपने पूर्व जन्म मे बोए गये हैं।

यथाबीज तथा वृक्ष का नियम शाश्वत सिद्धान्त है। और यह भी ध्रुव सत्य है कि बिना बीज बोए वृक्ष नही बनता। हमारे शुभाशुभ कर्म ही हमारे सुख-दुःख के निमित्त हैं। यह चिन्तन दुःख सहन की शक्ति प्रदान करता है।

कभी किसी भी गरीब का उपहास मत करो। उसकी बददुआ बहुत अनिष्टकारी होती है।

वन सके तो गरीव को सहयोग करो। वैसा न वने तो आश्वासन भरे मधुर शव्द ही दे दो। वह आपके गुण गाता चला जाएगा।

आज वाहरी तडक-भडक के प्रदर्शन की वीमारी वढती जा रही है, जो समाज को आर्थिक दृष्टि से ही नही, चारित्रिक दृष्टि से भी खोखला वनाती जा रही है।

जहा ऊपरी साज-सज्जा अथवा सौन्दर्य के प्रदर्शन का भाव होता है, वहा साधना तो हो ही नही सकती है। यदि अन्तरग सौन्दर्य को पाना है तो बाहरी सौन्दर्य से ऊपर उठो।

किसी की मजबूरी का अनुचित लाभ मत उठाओ। मजबूरी मे फसे व्यक्ति को यथाशक्ति सहयोग करो।

आपत्ति मे फसे व्यक्ति को दिया गया सहयोग आपकी विपत्तियो मे सुरक्षा कवच या सम्वल वन सकता है।

वे व्यक्ति धार्मिक नही हो सकते—

(१) जो मन्दिर-मस्जिद आदि धर्म स्थानो मे जाकर परमात्मा की उपासना तो करते है, किन्तु घर पर माता-पिता का अपमान-अनादर करते रहते हैं।

(२) जो सामायिक (समता भाव की साधना) की क्रिया तो करते है, किन्तु दिन भर क्रोध करते रहते है, चिड-चिडे वने रहते हैं और अप-शब्दो का प्रयोग करते रहते हैं।

(३) जो नमोकारसी-पोरषी जैसी तप क्रियाएं तो करते है किन्तु धूम्रपान जैसे व्यसनो मे आसक्त वने रहते हैं।

(४) जो साधु सन्तो का पर्युपासना तो करते हैं, किन्तु सज्जनो की उपेक्षा करके दुर्जनो से मैत्री वनाए रखते है और शराव-मास जैसे दुर्व्यसनो का सेवन करते है।

(५) जो प्रतिदिन नमस्कार महामन्त्र की माला फेरते है, किन्तु विधर्मियो के सम्पर्क मे रह-कर कर्मादान (महापाप) के धन्धे करते हैं।

उन्हे धार्मिक कैसे माना जाय ?

(१) जो अनेको तीर्थ स्थलो पर या सन्त दर्शन की यात्राये करते हैं, किन्तु बेईमानी तस्करी जैसे अनैतिक आचरणो से पैसा कमाते हैं ।

(२) जो मन्दिरो आदि धर्म स्थानो मे लाखो रुपयो का दान देते हैं, किन्तु शराब की दुकाने चलाते है, खाद्य पदार्थो मे अभक्ष्य पदार्थ मिलाते है एव राष्ट्र विरोधी गतिविधियो मे लिप्त रहते हैं ।

(३) जो प्रतिक्रमण (पापो का प्रायश्चित) जैसी धर्म क्रिया करते है किन्तु कम-ज्यादा तोलना, मिलावट करना, परनिन्दा एव आत्म प्रशंसा जैसे कार्य करते है ।

(४) जो उपवास-आयम्बिल, पौषध आदि तप साधना करते है, किन्तु खाने बैठते हैं, तो ऊल-जलूल कुछ भी खा जाते है, अजीर्ण होने पर भी खाते रहते हैं, भक्ष्या-भक्ष्य का विवेक नही रखते एव रस लोलुप बने रहते है ।

आज ऐन्द्रियक विपय सम्वन्धी सुखो के प्रति अन्धी दौट वढती जा रही है। इस दौड मे इन्सान का विवेक नप्ट हो जाता है ।

आज चारो तरफ वेश-विन्यास-रहन-सहन की तडक-भडकपूर्ण प्रदर्शन की वृत्ति वढती जा रही है, जो पूरे समाज के चारित्र को खोखला वनाकर रख देगी ।

अपने आपको धर्मात्मा कहलाने वालो के घरों में भी तड़क-भडक के प्रदर्शन का प्रदूषण फैलता जा रहा है ।

टी वी., वीडियो, मानसिक एवं चारित्रिक रोग फैलाने वाले नये प्रदूषण है । ये आने वाली पूरी पीढी को रोगग्रस्त बनाते जा रहे हैं। इसकी ओर किसी का ध्यान ही नही जा रहा है ।

ज्यो-ज्यो होटलो का खाना वढा, त्यो-त्यो भक्ष्या-भक्ष्य का विवेक भी नष्ट होने लगा, रोग भी वढने लगे, विमारी भी वढने लगी और सवसे अधिक चारित्रहीनता की वृद्धि होने लगी।

फाइवस्टार की सस्कृति ने जिस स्तर से खर्च वढाया उसी स्तर से शराव-मास का खान-पान एव चारित्रिक पतन का स्तर भी वढा दिया है। फाइवस्टार होटल मे खाने वाला, जहा भक्ष्या-भक्ष्य का कोई विवेक नही होता, क्या धार्मिक कहला सकता है ? जैनी हो सकता है ?

धनाधीशो के एव श्रीमन्तो के ऐश्वर्य प्रदर्शन किवा 'पोम्प एण्ड शो' को देखकर आप अपने मन मे हीन भावनाएं न आने दे। यदि आप उनके अन्तरंग मे झाक कर देखेगे तो लगेगा कि वे और उनके बच्चे दुर्व्यसनो मे आकण्ठ डूबकर पागल हुए जा रहे हैं।

अधिक पैसा इन्सान को प्राय· अन्धा बना देता है। अनैतिकता का उपार्जन व्यसन और फिजूलखर्ची बढाता है, जो सीधा व्यक्ति के चारित्र को प्रभावित करता है। इस पैसे से मिलने वाली श्रीमन्ताई क्षणिक है। वास्तविक श्रीमन्ताई तो आत्म साधना करके अन्तरग लक्ष्मी को प्राप्त करने पर ही प्राप्त होगी।

इन्सान की तृष्णा नूतनता की अभिकाक्षा मे कैसी दौड लगाती है—

(१) नये फैशन के कपडे देखे, मन लुभा गया, लेने को मन करता है।
(२) कोई नयी पिक्चर आयी, किसी से उसकी प्रशसा सुनी कि देखने को जी ललचाने लगा।
(३) नई डिजाईन के फर्नीचर देखे कि वनवाने की इच्छा होती है।
(४) किसी नये प्रकार के भोजन का स्वाद मिला कि वार-वार खाने को इच्छा होती है।
(५) कोई रेडियो, टी वी वीडियो का नया मॉडल, नया सेट देखा मन खरीदने को तैयार हो जाता है।
(६) नयी इम्पोर्टेड कार देखी कि विचार वनता है खरीदने का।
(७) कोई नयी डिजाईन का वगला देखा कि पुराने को तुडवाने का मन हो जाता है।
(८) कोई भी नयी वस्तु देखते ही मनुष्य का मन उसे पाने को तडप उठता है। वहा वह अपनी क्षमता को भी नही तोलता और अनचाहे झझट अपने लिये खडे कर लेता है।

वचो इस तृष्णा के महाजाल से।

याद रखो, धर्म आत्म शान्ति का परम पुनीत पाथेय है, अत: किसी भी कीमत पर धर्म को मत छोड़ो। धर्म गया तो आत्मशान्ति गयी और आत्म-शान्ति के चले जाने पर जीवन मे बचता ही क्या है ?

यदि जीवन मे सब कुछ खोकर भी धर्म को बचा लिया तो समझो आपके पास सब कुछ है। धर्म जीवन की सर्वोपरि सत्ता है।

बहुत बार हमारा प्रबलतम पुरुषार्थ भी हमे सफलता तक नही पहुचाता है, कभी हमे परास्त भी होना पडता है, किन्तु इतने मात्र से पुरुषार्थ को छोड़ नहीं देना चाहिये ।

सत्कर्म और पुरुषार्थ एक दिन अवश्य सफल होते हैं । हार मत मानिये, बढ़ते जाइये । मजिल प्राप्त होगी ही ।

यदि तुम कुछ बनना चाहते हो तो अपने पथ से गिरे हुए व्यक्तियो को मत देखो—उन्हे आदर्श मत बनाओ। देखना ही है तो गिरकर उठे हुए व्यक्तियो को देखो। अपनी मजिल पर मुस्तैदी से बढते हुए को देखो।

अपने आदर्श का चयन करते समय प्रामाणिकता एव चरित्रनिष्ठा पर अवश्य ध्यान दो। उज्ज्वल चारित्र का धारक व्यक्ति ही हमारा प्रेरणा स्रोत बन सकता है।

आत्मा और परमात्मा को भुलाकर दुनिया के गोरख धन्धों में फंसा व्यक्ति कभी आत्म शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता है। आत्म शान्ति के पथ पर चलते हुए 'आत्मा' का ध्यान अनवरत रहना चाहिये।

'मैं कौन हूं' के स्वरों को सदा अपने भीतर में अनुभव करते रहो। संसार का कोई भी कार्य करते हुए आत्म जागृति बनाए रखो, फिर अशान्ति कहां से आएगी?

वैसे प्रत्येक आत्मा का अपने कर्मों के अनुसार अपना संसार होता है, किन्तु मनुष्य के पास वह क्षमता है कि वह अपने संसार को–जीवन को चाहे जैसा बना सकता है ।

आत्मा से परमात्मा बन जाने की क्षमता मनुष्य के पास, केवल मनुष्य के पास ही है । यदि उसने इसका उपयोग करना नही सीखा तो उसका जीवन व्यर्थ है ।

आज अधिकाश व्यक्ति अपने व्यक्तित्व विकास की बात सोचते हैं, किन्तु उनकी यह सोच प्राय बाह्य व्यक्तित्व तक ही सीमित रहती है। वे अपने व्यक्तित्व विकास का मानदण्ड सामाजिक या राज-नैतिक प्रतिष्ठा तक सीमित कर देते हैं।

व्यक्तित्व विकास का अर्थ है—आन्तरिक व्यक्तित्व का निखार—आत्मतेज का उद्दीप्त होना और आत्म-शान्ति का बढ़ते जाना। यह विकास ही व्यक्तित्व को महान् एव उज्ज्वल बनाता है।

पैसा कमा लेना सरल है, किन्तु उसे कब और कैसे खर्च करना, इसकी समझ आना सरल नही है। इसके लिये स्वस्थ एव सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता होती है।

वहुत वार पैसा वढ जाने पर व्यक्ति पागल सा वन जाता है, उसके जीवन मे अनेको व्यसन प्रविष्ट हो जाते है और परिवार अनेको दुर्गुणो का केन्द्र वन जाता है।

पैसो का व्यय अलग बात है और सद्व्यय अलग। आम तौर पर पैसो का व्यय और दुर्व्यय तो होता रहता है, सद्व्यय तो विरले व्यक्ति ही कर पाते हैं।

समझदार व्यक्ति कजूसाई नही करते, किन्तु बचत अवश्य करते हैं। बचत एव कजूसी मे बहुत अन्तर है।

कुछ ऐसे सनकी श्रीमन्त होते हैं, जो अपने विचित्र शौक पूरा करने के लिये पानी की तरह पैसा बरबाद करते रहते हैं, किन्तु उनके द्वारा पैसे का सद्व्यय नहीं होता है।

दुर्गुणी व्यक्ति पाप करना 'फैशन' मानता है। मितव्ययी अथवा सदाचारी होना सद्गृहस्थ का लक्षण है।

तृष्णा–धन, पद, प्रतिष्ठा या अन्य किसी भी प्रकार की क्यो न हो, वह एक महाशल्य है, उसे दूर करने के लिये विचारो की शल्य चिकित्सा करो ।

तृष्णाग्रस्त व्यक्ति सब कुछ पाप करने को तत्पर हो जाता है । आसक्ति कौनसा पाप नही करवाती है ?

जब तक अहंकार की भावना समाप्त नही हो जाती या कम नही हो जाती, दूसरो की विशेषताओ को स्वीकार करना कठिन है ।

पूर्वाग्रह से आबद्ध चिन्तन, नूतन, स्वस्थ मानसिकता का सृजन नही कर सकता है। अपने चिन्तन को आग्रह मुक्त बनाओ—तुम्हारी प्रज्ञा विकासशील बनती जाएगी।

आपके चिन्तन का प्रभाव आपके जीवन पर ही नही पडता, आस-पास के वायुमण्डल अथवा परिपार्श्ववर्ती जनचेतना को भी वह प्रभावित करता है। अत अपने चितन के प्रति सजग रहो, कही वह दूसरो के पतन का कारण न बन जाये।

दूसरों को हानि पहुंचाने की निकृष्ट भावना से बचो, क्योंकि यह भावना दूसरों को नुकसान पहुंचाने से पूर्व आपको ही नुकसान पहुंचायेगी ।

पूर्वाग्रह से आबद्ध चिन्तन, नूतन, स्वस्थ मानसिकता का सृजन नही कर सकता है। अपने चिन्तन को आग्रह मुक्त बनाओ—तुम्हारी प्रज्ञा विकासशील बनती जाएगी।

आपके चिन्तन का प्रभाव आपके जीवन पर ही नही पडता, आस-पास के वायुमण्डल अथवा परिपार्श्ववर्ती जनचेतना को भी वह प्रभावित करता है। अत अपने चिंतन के प्रति सजग रहो, कही वह दूसरो के पतन का कारण न बन जाये।

दूसरो को हानि पहुचाने की निकृष्ट भावना से वचो, क्योकि वह भावना दूसरो को नुकसान पहुचाने के पूर्व आपको ही नुकसान पहुचायेगी ।

जीवन मे ऐसी मैत्री भावना का विकास करो कि किसी के प्रति दुर्भावना आने ही नहीं रहे । फिर देखिये आप कितने निर्भय हो जाते हैं ।

आम व्यक्ति की एक मानसिक हीन ग्रन्थी होती है कि वह स्वयं को मिलने वाले सुखो से वचित हो जाता है और वह सुख दूसरो को मिल जाता है तो ईर्ष्या से भर जाता है । उसे गिराने का—नीचा दिखाने का षडयन्त्र करने लगता है ।

वास्तव में ईर्ष्या अथवा षड्यन्त्र से वह स्वयं सुखी नही हो जाता है, अपितु उसका दु ख बढ़ता जाता है । अत दूसरे को सुखी देखकर प्रसन्नता व्यक्त करो । उसका आधा सुख तुम्हे केवल उस प्रसन्नता से ही प्राप्त हो जायेगा ।

आपके सुख-दुःख हानि-लाभ का मुख्य निमित्त आपका स्वकृत कर्म है। अत उसमे दूसरो को दोष देकर नये कर्मों का वन्धन मत करो।

यदि तुम्हे कोई परेशान कर रहा हो, तुम्हे हानि पहुंचाने का प्रयास कर रहा हो, तो भी उस पर क्रोध मत करो। सतर्क अवश्य बने रहो, किन्तु उसे अपने कर्मों का परिणाम ही समझो।

यदि आप न्यायाधीश है या समाज नेता है और किसी निरपराध व्यक्ति को अपराधी-दोषी करार दे रहे है, तो यह पाप आपको जन्म-जन्म तक नही छोडेगा ।

एक वकील जब किसी बेगुनाह को अपराधी घोषित करवाकर जेल के सीकचो मे बन्द करवा देता है, मृत्युदण्ड दिलवा देता है, तो बताइये उस व्यक्ति के अन्तरग मे कितनी क्रूर विद्वेष की भावना उत्पन्न होगी ? क्या यह भावना जन्म-जन्म तक उसका पीछा छोड़ेगी ?

अपराधी को दण्ड के द्वारा बदल पाना कठिन है, उसे आत्मीयता से बदला जा सकता है। उसे स्नेह दो वह अपने आप अपराध छोड़ने को मजबूर हो जायेगा।

यदि कोई अपराध कर लेता है तो उसे सुधारने के प्रयास की बात तो न्याय संगत हो सकती है, किन्तु उसे सजा देते समय गम्भीर चिन्तन अपेक्षित है।

आप दूसरो का न्याय करना छोड़कर अपना न्याय करे। अपनी आत्मा का विचार करे। उसमे कितनी अपराध वृत्तिया छिपी हुई है।

आज अनेक स्थानो पर ऐसे प्रयोग हो रहे है कि सद्भावो की प्रेरणा से क्रूर से क्रूर अपराधियो को बदला जाये। और इस रूप मे पूरे के पूरे गांव रूपान्तरित होते जा रहे हैं। प्रयोग करके तो देखो ?

अभावो से घिरा हुआ व्यक्ति उतनी अनीति नही करता है, जितनी तृष्णा के जाल मे फसा श्रीमन्त करता है। अत अनीति का हेतु अभाव नही तृष्णा है।

तृष्णा की खाई अपूरणीय होती है, उसमे उलझा इन्सान नीति-अनीति का भान भूल जाता है। बचालो अपने आपको इस खाई मे गिरने से।

चूंकि आप मे वे विशेपताएं नही हैं, अत: दूसरो की विशेषताओ को उनका ढोग या दिखावा मत समझो। आवश्यक नही कि आप जहा नही पहुच सकते हैं, वहा कोई पहुच ही नही सकते।

बहुत बार इन्सान अपनी कमजोरियो को ढकने के लिये दूसरों की दस कमजोरिया आगे कर देता है, किन्तु इससे उसकी कमजोरी छुप नही सकती।

आज की चुनाव पद्धति ने योग्यता के मान-दण्ड को ममाप्त कर दिया है। वहा केवल आरोप-प्रत्यारोप एव राग-द्वेप की लडाई ही रह गई है।

अव तो धार्मिक मस्याओ मे भी 'इलैक्शन' होते है—'सिलैक्शन' नही। वहा भी सेवाभाव की नही कुर्सी की भूख वढती जा रही है। यह भूख पूरे ममाज को खाती जा रही है।

अपने भीतर केवल एक सहानुभूति के गुण का विकास करिये। फिर देखिये आप कितनो का हृदय जीत लेगे, कितनो को मित्र बना लेगे।

सहानुभूति के लिये आपको चाहिये भी क्या? केवल वचनो मे मधुरता, करुणा, पूर्ण हृदय और स्वार्थहीन सहिष्णुता। बस फिर तो आपको खोजने पर भी अपना कोई शत्रु नही मिलेगा।

देव वनने से पूर्व मनुष्य वनो । सही अर्थों मे तो देव वनने से सच्चा मानव वनना ही श्रेष्ठ है, क्योकि श्रमपूर्ण साधना तो मानव ही कर सकता है ।

याद रखो, धर्म ग्रन्थो ने देव जीवन को दुर्लभ नही कहा है, मानव जीवन को ही दुर्लभ वताया है । इस दुर्लभ जीवन का सम्यगुपयोग करलो ।

अपने भीतर केवल एक सहानुभूति के गुण का विकास करिये। फिर देखिये आप कितनो का हृदय जीत लेगे, कितनो को मित्र बना लेंगे।

सहानुभूति के लिये आपको चाहिये भी क्या ? केवल वचनो मे मधुरता, करुणा, पूर्ण हृदय और स्वार्थहीन सहिष्णुता। बस फिर तो आपको खोजने पर भी अपना कोई शत्रु नही मिलेगा।

देव बनने से पूर्व मनुष्य बनो । सही अर्थों मे तो देव बनने से सच्चा मानव बनना ही श्रेष्ठ है, क्योकि श्रमपूर्ण साधना तो मानव ही कर सकता है ।

याद रखो, धर्म ग्रन्थो ने देव जीवन को दुर्लभ नही कहा है, मानव जीवन को ही दुर्लभ बताया है । इस दुर्लभ जीवन का सम्यगुपयोग करलो ।

आज के तथाकथित वुद्धिजीवियो मे जिज्ञासा कम और कौतूहल अधिक दिखाई देता है। कौतूहल वृत्ति ज्ञान द्वार नही खोलती है। वह एक थोथा विनोद बनकर रह जाती है। कौतूहल छोड़ो, सही अर्थों मे जिज्ञासु बनो।

जिज्ञासा के द्वारा ज्ञान के नये-नये ग्रायाम खुलते जाते है। सच्चा जिज्ञासु प्रतिपल उपलब्धियो की ओर बढता जाता है। जिज्ञासा बढ़ाईये, जिज्ञासा ग्रापको बहुत ऊचाईयो पर चढा देगी।

जैनागमो की महत्ता का ज्ञान अधिकाश जैन नामधारियो को नही है। विदेशी लोग इनके महत्त्व को समझ रहे है और इनसे बडे-बडे अनुसन्धान किये है।

आप मे से शायद ही किसी को ज्ञात होगा कि "एक जर्मन विद्वान ने ३२ आगमो एवं १३ अन्य ग्रन्थो पर 'रिसर्च' करके महानिवन्ध लिखा है। 'अभिधान चिन्तामरिए' एव 'कल्पसूत्र' जैसे ग्रन्थ सर्वप्रथम जर्मनी मे मुद्रित हुए है।

आगमज्ञ व्यक्ति अनुभवी एव समय के पारखी होते है । वे यह जानते है कि कब, कितना और क्या करना है ? किसको कब, और क्या उपदेश देना है ?

समय की परख किये बिना कार्य करने वाला व्यक्ति पश्चात्ताप करता है । अपने भीतर समयज्ञता का विकास करो ।

जीवन वृक्ष पर धर्म रूपी पुष्पो को महकाने के लिये पहले सद्‌गुण रूपी कलियो का खिलना आवश्यक है ।

सद्‌गुणो का विकास ही धार्मिकता की भूमिका का सृजन करता है । अत· धार्मिक वनने के पूर्व गुणवान्‌ वनने का प्रयास करो ।

यदि तुम शिष्ट-सज्जन बनना चाहते हो तो पहले उसे समझो—

(१) दीन-दुःखी को देखकर यथा शक्ति उनके सहयोग हेतु तत्पर बनो ।

(२) उपकारी के उपकार को याद रखो ।

(३) अशोभनीय प्रवृत्तियो-कार्यों से बचते रहो ।

(४) निन्दा-विकथा का त्याग करो और सज्जनो की प्रशसा करो ।

(५) अधिक पद-प्रतिष्ठा या धन की प्राप्ति होने पर भी विनम्र बने रहो ।

(६) जिस सभा-सोसायटी मे बैठो उसके नीति-नियमो का पालन करो ।

(७) छोटो के साथ प्रेम से और बडो के साथ सम्मान से व्यवहार करो । ये सामान्य से कृत्य आपको शिष्ट बना देंगे ।

यदि किसी को विपत्तियो से घिरा हुआ देखो और फिर भी उसे प्रसन्न देखो तो उसके धैर्य की अवश्य प्रशसा करो।

किसी को सम्पन्नता के बीच भी विनम्र देखो तो उसकी प्रशसा करना न चूको। यही नही, उसके इन गुणो को अपने जीवन मे भी स्थान देने के संकल्प करो।

विपत्तियों के आने पर भी दीन भाव नही आने देना और सम्पन्नता मे फूल कर कुप्पा नही होना सामान्य बात नही है। यह एक असाधारण बात है।

समता योग का साधक सम्पन्नता एव विपन्नता—दोनो स्थितियो मे समरूप बने रहने का अभ्यास करता है और यह आत्म शान्ति का मूल आधार है।

सुख की घडियो मे फूलो नही और दु ख के क्षणो मे खिन्न मत वनो—वस साधक जीवन की शुरूआत हो गई समझो।

सामान्यसी उपलब्धियो पर अहकार मे उलझने वाला एव जरा-सी विपत्ति पर अस्थिर चित्त हो जाने वाला साधना नही कर सकता।

मन के मायाजाल मे उलझ मत जाना, वह तुम्हे गहरे बन्धनो मे जकड देगा ।

मन को माया के बन्धन से मुक्त करके देखो वह तुम्हे आत्मा-परमात्मा के निकट ले जाएगा । मन की शक्ति उभयमुखी है ।

अपने उपकारी के प्रति कृतज्ञता से भरे रहना एक महान् गुण है। वह उपकार की प्रेरणा देता रहता है।

उपकारी के उपकारो को भूल कर उसकी निन्दा करना—उसे गिराने का प्रयास करना—इससे बढ़कर कृतघ्नता और क्या होगी ?

उन्च आदर्शात्मक संस्कृति आत्म धर्म की आधारशिला है, अत सस्कृति को स्थायित्व प्रदान करने वाले कुलाचारो कुल मर्यादाओ का पालन करो, उन्हे पौराणिक या पुराण पन्थियो का कार्य कहकर उपहास का विषय मत बनाओ ।

सस्कृति के अनुकरण का यह अर्थ नही है कि आप गलत रूढ़ परम्पराओ का अंधानुकरण करे । अनुकरण चिन्तन पूर्ण होना चाहिये ।

आत्म शुद्धि के मार्ग पर बढने के लिये त्याग करना आवश्यक है, पर किसका ? वाहर की वस्तुओ का नही, अन्तरग विकारो का भी ।

त्याग हेय का ही होता है, उपादेय का नहीं, किन्तु हेय को समझ लेना आवश्यक है । स्मरण रखो आत्मा को मलिन वनाने वाले सभी तत्त्व हेय हैं—चाहे वे अन्तरग हो या वाह्य ।

जो व्यक्ति यह जान लेते हैं कि परनिन्दा पाप पाप हैं, वे ही उससे बच सकते हैं और बचने वालो की प्रशंसा कर सकते हैं ।

वही व्यक्ति गुणानुरागी बन सकता है, जो दूसरे मे हजारो दोषो को नही देखकर उनमे किसी एक गुण की खोज कर लेता है।

जो दुःखों के पहाडो को सिर पर मण्डराते देख कर भी हंसता रहता है, वह सहज मानसिक शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

तुम सदा उन विरले व्यक्तियो की कोटि मे आने का प्रयास करो जो दुःख की घडियों मे हंसते रहते हैं।

पारिवारिक प्रसन्नता का कोई मूल्य नही आंका जा सकता है, वह अनन्त पुण्यो के उदय से प्राप्त होती है।

पुण्यहीन परिवारो मे जरा-जरा-सी बातो से सक्लेश एव द्वन्द खडे हो जाते है। ऐसे परिवार विरले ही मिलेंगे जो सदा स्नेह से भरे रहते हो।

पहले यह निश्चित करलो कि तुम्हे क्या बनना है—तुम्हारा लक्ष्य क्या है ? फिर वैसे व्यक्तियो की सगति एव प्रशसा करते रहो । गुणवान् बनना हो तो गुणवानो की और दुर्जन बनना हो तो दुर्जनो की ।

तुम्हारा ससर्ग और तुम्हारे द्वारा को जाने वाली प्रशसा इस बात का प्रमाण है कि तुम भी वैसे ही बनना चाहते हो ।

प्रासगिक एव प्रस्तुत विषय पर ही बोलो । अप्रासगिक बोलने वाला व्यक्ति अनेक विवादो को बढाता रहता है ।

वाणी का विवेक, जबान का सयम व्यक्ति को अनेक अनपेक्षित विपत्तियो से बचा देता है । सकटों से उबार लेता है ।

यदि पारिवारिक जीवन मे सुखी रहना चाहते हो तो अपनी आवश्यकताएं सीमित करो, सादगी से जीना सीखो और फिजूलखर्ची बन्द कर दो।

आज की फैशन परस्ती ने फिजूल खर्ची इतनी बढ़ा दी है कि अच्छे-अच्छे गुणानुरागी परिवार भी अभावों की चक्की में पिसते जा रहे है और उनके प्रेम भरे समन्वित परिवारों मे संघर्षों की आग लग रही है ।

औचित्य का पालन मानवीय जीवन का सामाजिक दायित्व ही नही, अविभाज्य, अंग भी है । गृहस्थ जीवन हो या साधु जीवन औचित्य का पालन सभी के लिये अनिवार्य होता है ।

स्वार्थी, आलसी एव विषयासक्त व्यक्ति औचित्य का पालन कर ही नही सकता है, अतः स्वयं को इन दुर्गुणो से बचाये रखने पर ही तुम अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकोगे ।

यो तो अच्छा विचार करना भी सरल नही है। तथापि अच्छे विचार आ भी जाएं तो उन्हे क्रियान्वित करना—अच्छे कार्य करना उतना सरल नही है।

यदि आपसे अच्छे कार्य करते न बने तो भी अपना चिन्तन तो अच्छा बनाए रखो। यह भी न बने तो अच्छे कार्यों की प्रशसा तो किया ही करो।

प्रमाद, आलस्य एव लापरवाही आत्म विकास की साधना-यात्रा के प्रबलतम शत्रु हैं। साधना की यात्रा तो प्रमाद-परित्याग एवं सतत जागृति पूर्ण पुरुषार्थ के द्वारा ही पूरी हो सकेगी।

साधना-यात्रा में जिस महत्त्वपूर्ण पाथेय की आवश्यकता होती है वह है—विचारो की विशुद्धि एवं समृद्धि।

प्रत्येक कार्य की सफलता के लिये उचित समय एवं समुचित स्थान को पहले समझ लेना आवश्यक है।

समय और स्थान के औचित्य का परिज्ञान कार्य को बहुत सुगम बना देता है और यही कार्य की सफलता का मूल रहस्य भी है।

महत्त्वपूर्ण कार्य को छोड़ कर निरर्थक बातों मे समय बरबाद करने वाले व्यक्ति कभी भी आगे नही बढ सकते । उनके द्वारा कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न नही हो सकता है ।

निरर्थक बातें ही नही, निरर्थक विचारों मे— कल्पना की उडानो मे बहने वाला व्यक्ति भी जीवन मे किन्ही उच्च आदर्शों का स्पर्श नही कर सकता है । बचाओ अपने आपको निरर्थक बातो एवं निरर्थक विचारो से ।

यदि तुम कुछ करना चाहते हो, कुछ बनना चाहते हो, तो पहले सुदृढ सकल्प करो। विचारो की अस्थिरता या उद्देश्य की चचलता किसी भी क्षेत्र मे सफल नही होने देती है।

कुछ करने या बनने के लिये फौलादी सकल्प के साथ सुदृढ आस्था, कर्मठ कर्तृत्व की भी आवश्यकता होती है। 'मैं यह करके' या 'मैं ऐसा बनकर के' ही रहूगा यह आस्था होनी ही चाहिये।

जीवन मे गुणो का विकास एवं प्राप्त गुणो का स्थिरत्व तभी सम्भव होगा, जबकि व्यक्ति इन्द्रिय विषयो की आसक्ति से बचा रहे । कषायो को नियंत्रित करे ।

काम-क्रोध, लोभ, मान, मद और ईर्ष्या ये आत्मिक गुणो के प्रबलतम शत्रु है; जो हमारे भीतर बहुत समय से बैठे हुए हैं । गुणी बनने के लिये इन शत्रुओ को बाहर निकालना ही होगा । अन्यथा आत्मा दुर्गुणो का कोष ही बनी रहेगी ।

यह नीति वाक्य स्मरणीय है कि "रोग और दुश्मन को पैदा ही न होने दो, यदि पैदा हो गये है, तो शीघ्र उपाय करके निरस्त कर दो।"

रोग और दुश्मन को कभी छोटा मत समझो, वह छोटा-सा भी भयंकर अहित कर सकता है।

याद रखो जीवन के लिये भोजन है, भोजन के लिये जीवन नही । इसीलिये आत्मा उत्पन्न होते ही आहार-भोजन ग्रहण करती है—नये शरीर को जीवित रखने के लिये ।

आहार ग्रहण प्रथम आवश्यकता है उसके बाद ही शरीर, इन्द्रिया, भाषा और मन का निर्माण होता है ।

सावधान ! भोजन मे आसक्ति—जिह्वेन्द्रिय की गुलामी तुम्हें शारीरिक एवं मानसिक अनेक संकटो मे उलझा सकती है।

सुखी भविष्य के लिये बच्चो को भी यह सिखाना आवश्यक है कि कब खाना……कितना खाना कैसे खाना और क्या खाना…… ?

किसी भी पदार्थ में इतनी अधिक आसक्ति भी नही बढाओ कि रोग आने पर भी उसे छोडा न जा सके ।

सुखी जीवन की परिभाषा है—निरोगीतन, निराकुलमन, स्पष्ट मधुर वचन एवं सन्तुलित आचरण ?

साधना का माध्यम शरीर है और शरीर का साधन आहार है, अतः आहार करते समय अपनी शारीरिक प्रकृति को समझकर उसके प्रतिकूल आहार नही करना चाहिये ।

शरीर की तीन मुख्य प्रकृतियां है—वात-पित्त और कफ—इन्हें समझ कर सन्तुलित आहार करने वाला व्यक्ति स्वस्थ रहता है ।

स्वस्थ शरीर मन की स्वस्थता–प्रसन्नता का निमित्त होता है, अत शारीरिक स्वास्थ्य की उपेक्षा मत करो ।

कब खाना ? कितना खाना ? क्या खाना ? कैसे खाना और क्यो खाना ? इत्यादि बातो का ध्यान रखना चाहिये ?

यदि मन को स्वस्थ रखना चाहते हो, तो सन्तुलित एवं नियमित आहार के प्रति सजग रहो। स्वाद के लालच में इतना अधिक मत खाओ कि उसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडे ।

याद रखो पेट आपका है, पराया नही, अतः इसे पेट ही रहने दो। इसे कचरा पेटी या माल गोदाम मत बनाओ कि जो आया सो इसमे डाल दिया।

आहार का संयम सामान्य बात नही है। यह साधना की भूमिका का निर्माण करता है—कहा जाता है—"जैसा खावे अन्न वैसा रहे मन"।

निम्न बातों का चिन्तन रसनेन्द्रिय विजय में सहयोगी हो सकता है—

(१) रसनेन्द्रिय के अधीन रस लोलुप व्यक्ति मांस एवं मद्य जैसे अभक्ष्य पदार्थों में आसक्त होकर वर्तमान जीवन को ही नहीं, आगामी जीवन को भी बिगाड़ देते हैं।

(२) रसनेन्द्रिय से परवश व्यक्ति होटलों एवं रेस्टोरेंटों में जाकर अत्यधिक पैसा खर्च करते हैं, जिससे स्वास्थ्य तो बिगड़ ही जाता है, अर्थ व्यवस्था भी डावाँडोल हो जाती है।

(३) रसनेन्द्रिय के वशीभूत व्यक्ति भोजन में नमक आदि की जरा-सी कमी पर क्रोधित हो उठते हैं, परस्पर संक्लेश करते हैं और परिणामतः पारिवारिक जीवन संघर्षमय बन जाता है। उस परिवार की सुख-शान्ति समाप्त हो जाती है।

(४) रसनेन्द्रिय में आसक्त व्यक्ति साधना में गति नहीं कर सकता क्योंकि उसका मन बार-बार स्वादिष्ट व्यञ्जनों-पकवानों पर ही दौड़ता रहता है। वह मन लगाकर जरा-सी भी उपासना-भक्ति नहीं कर पाता है। उसे तो स्वाद में ही भगवान् दिखाई देते हैं।

अतः रसलोलुपता से बचो।

याद रखो पेट आपका है, पराया नही, अत. इसे पेट ही रहने दो। इसे कचरा पेटी या माल गोदाम मत बनाओ कि जो आया सो इसमे डाल दिया।

आहार का संयम सामान्य बात नही है। यह साधना की भूमिका का निर्माण करता है—कहा जाता है—"जैसा खावे अन्न वैसा रहे मन"।

निम्न बातो का चिन्तन रसनेन्द्रिय विजय मे सहयोगी हो सकता है—

(१) रसनेन्द्रिय के अधीन रस लोलुप व्यक्ति मास एव मद्य जैसे अभक्ष्य पदार्थों मे आसक्त होकर वर्तमान जीवन को ही नही, आगामी जीवन को भी बिगाड देते है।

(२) रसनेन्द्रिय मे परवश व्यक्ति होटलो एव रेस्टोरेंटो मे जाकर अत्यधिक पैसा खर्च करते है, जिससे स्वास्थ्य तो बिगड ही जाता है, अर्थ व्यवस्था भी डावाडोल हो जाती है।

(३) रसनेन्द्रिय के वशीभूत व्यक्ति भोजन मे नमक आदि की जरा-सी कमी पर क्रोधित हो उठते है, घर मे सक्लेश करते है और परिणामत पारिवारिक जीवन सघर्षमय बन जाता है। उस परिवार की सुख-शान्ति समाप्त हो जाती है।

(४) रसनेन्द्रिय मे आसक्त व्यक्ति साधना मे गति नही कर सकता क्योकि उसका मन बार-बार स्वादिष्ट व्यजनो-पकवानो पर ही डोलता रहता है। वह मन लगाकर जरा-सी भी उपासना-भक्ति नही कर पाता है। उसे तो स्वाद मे ही भगवान् दिखाई देते है।

अत, रसलोलुपता से बचो।

व्यावहारिक जीवन में वेशभूषा अथवा वस्त्र-परिधान का भी अपना महत्त्व होता है। इसके लिये निम्न बातो की सतर्कता आवश्यक है—

(१) केवल शरीर-सौन्दर्य के लिये परिधान में अन्धानुकरण नही होना चाहिये, जैसा कि आज कल आम युवा-युवतियो मे होता है।

(२ आपकी उम्र, सामाजिक प्रतिष्ठा, आपके देश एवं आपके स्वास्थ्य के अनुकूल वेशभूषा होनी चाहिये।

(३) यदि आप अपने समाज और देश के अनुरूप वेश नही पहनते है तो कभी भी विपत्ति के शिकार हो सकते है।

(४) धर्म स्थानो मे तो वेश-विन्यास मे सादगी होनी ही चाहिये, जबकि आज युवा-युवतियां धर्म स्थानो मे 'अभिनेता' अभिनेत्री बन कर आते है।

(५) वेशभूषा ऐसी नही होनी चाहिये जिससे आपको कही भी उपहास का पात्र होना पड़े।

व्यावहारिक जीवन के कोई भी कार्य हो, यदि उनमे ज्ञान दृष्टिपूर्वक जिनाज्ञा का पूर्ण ध्यान रखा जाता है तो वे कार्य 'धर्म' या 'पुण्य' की कोटि मे आ जाएगे ।

धर्म साधना के लिये शुद्ध व्यवहार का होना आवश्यक है । जिसका व्यवहार विशुद्ध नही है, उसकी धर्म आराधना निर्मल-विशुद्ध एव आनन्द-दायी नही बन सकती है ।

व्यावहारिक जीवन के कोई भी कार्य हो, यदि उनमे ज्ञान दृष्टिपूर्वक जिनाज्ञा का पूर्ण ध्यान रखा जाता है तो वे कार्य 'धर्म' या 'पुण्य' की कोटि मे आ जाएगे ।

आत्म साधना के लिये शुद्ध व्यवहार का होना आवश्यक है । जिसका व्यवहार विशुद्ध नही है, उसकी धर्म आराधना निर्मल-विशुद्ध एव आनन्द-दायी नही बन सकती है ।

व्यावहारिक जीवन में वेशभूषा अथवा वस्त्र-परिधान का भी अपना महत्त्व होता है। इसके लिये निम्न बातो की सतर्कता आवश्यक है—

(१) केवल शरीर–सौन्दर्य के लिये परिधान में अन्धानुकरण नही होना चाहिये, जैसा कि आज कल आम युवा-युवतियो मे होता है।

(२ आपकी उम्र, सामाजिक प्रतिष्ठा, आपके देश एव आपके स्वास्थ्य के अनुकूल वेशभूषा होनी चाहिये।

(३) यदि आप अपने समाज और देश के अनुरूप वेश नही पहनते है तो कभी भी विपत्ति के शिकार हो सकते है।

(४) धर्म स्थानो मे तो वेश-विन्यास मे सादगी होनी ही चाहिये, जबकि आज युवा-युवतिया धर्म स्थानो मे 'अभिनेता' अभिनेत्री बन कर आते है।

(५) वेशभूषा ऐसी नही होनी चाहिये जिससे आपको कही भी उपहास का पात्र होना पड़े।

व्यावहारिक जीवन में वेशभूषा अथवा वस्त्र-परिधान का भी अपना महत्त्व होता है। इसके लिये निम्न बातो की सतर्कता आवश्यक है—

(१) केवल शरीर–सौन्दर्य के लिये परिधान में अन्धानुकरण नही होना चाहिये, जैसा कि आज कल आम युवा-युवतियो मे होता है।

(२ आपकी उम्र, सामाजिक प्रतिष्ठा, आपके देश एवं आपके स्वास्थ्य के अनुकूल वेशभूषा होनी चाहिये।

(३) यदि आप अपने समाज और देश के अनुरूप वेश नही पहनते है तो कभी भी विपत्ति के शिकार हो सकते हैं।

(४) धर्म स्थानो मे तो वेश-विन्यास मे सादगी होनी ही चाहिये, जबकि आज युवा-युवतिया धर्म स्थानो मे 'अभिनेता' अभिनेत्री बन कर आते है।

(५) वेशभूषा ऐसी नही होनी चाहिये जिससे आपको कही भी उपहास का पात्र होना पड़े।

व्यावहारिक जीवन के कोई भी कार्य हो, यदि उनमे ज्ञान दृष्टिपूर्वक जिनाज्ञा का पूर्ण ध्यान रखा जाता है तो वे कार्य 'धर्म' या 'पुण्य' की कोटि मे आ जाएगे ।

आत्म साधना के लिये शुद्ध व्यवहार का होना आवश्यक है । जिसका व्यवहार विशुद्ध नही है, उसकी धर्म आराधना निर्मल-विशुद्ध एव आनन्द-दायी नही बन सकती है ।

तुम्हे कोई व्यक्ति जानबूझ कर परेशान करता हो तब भी अपने चित्त का सन्तुलन न बिगडने दो, अपने अन्दर घृणा और द्वेष को न पनपने दो ।

विपरीत परिस्थितियो मे भी अपना सन्तुलन बनाए रखना महानता का लक्षण है ।

यदि तुम अपने परिवार के अथवा अपने किसी सगठन के मुखिया हो और अनुशासन की दृष्टि से अनिवार्य परिस्थिति मे कभी कुछ कठोर बनना पडे कुछ ऊंचे स्वरो का प्रयोग करना पडे तो अवश्य करो, किन्तु शीघ्र ही उस अनुशासित व्यक्ति के उद्वेग को दूर करने का प्रयास करो—उसे मानसिक शान्ति दो ।

अनुशास्ता को कुछ परिस्थितियो मे कठोर होना ही पडता है, अन्यथा शासन प्रगति नही कर सकता है । अनुशासक की कठोरता मे भी मधुरता छुपी होती है ।

सुज्ञ व्यक्ति अपनी इन्कम—आय के चार विभाग करता है—एक हिस्सा स्थायी निधि में जोड़ता है, दूसरा व्यापार व्यवसाय मे लगाता है, तीसरा परिवार के लिये खर्च करता है और चौथा धर्म के लिये—परमार्थ के लिये लगाता है ।

आय के अनुरूप खर्च करने वाला व्यक्ति आर्थिक सकटो मे कम उलझता है ।

हमारे देश की सस्कृति मुसलमानो एव अ ग्रेजो के आक्रमणो के बाद हतप्राण-सी हो गई है। उनका प्रभाव आज भी कायम है। अब आवश्यकता है पुन. उस मोक्ष प्रधान सस्कृति की सुरक्षा की ।

सस्कृति की सुरक्षा के लिये सदाचार आवश्यक है और सदाचार मे तीन बातो का ध्यान रखो—(१) सात्विक खान-पान, (२) मर्यादित राष्ट्रीय वेषभूषा एव (३) परस्पर पवित्र स्नेह पूर्ण सम्बन्ध ।

यदि तुम अशान्त रहते हो, तो उसका कारण अपने भीतर ही खोजो। तुम दूसरो को अशान्त बनाने का प्रयास करते होगे! तुम दूसरो का बुरा सोचते रहते होगे!

जो दूसरो का विकास देख नही पाता, दूसरों की प्रशसा सुन नही पाता, वह स्वयं एवं दूसरो के चित्त के उद्वेग-अशान्ति का निमित्त होगा ही।

अपने साथ अन्याय करने वाले के प्रति भी बुरा विचार मत आने दो। अपना नुकसान कर देने वाले के प्रति भी गुस्सा मत करो, स्नेह की धार बहाते रहो फिर देखो उसका हृदय कैसे परिवर्तित होता है!

क्षमा और प्रेम के अस्त्र से क्रूर से क्रूर प्राणी के हृदय पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है, उसे मृदुल-स्नेहिल बनाया जा सकता है।

व्यवस्थित एवं स्नेह सभर पारिवारिक जीवन के लिये मुखिया का चित्त अनुद्विग्न बने रहना आवश्यक है। यदि परिवार का प्रमुख सदस्य अशान्त चित्त है तो परिवार पर उसका प्रभाव निश्चित पड़ेगा। परिवार वाले उद्विग्न रहेगे तो—

(१) घर की प्रतिष्ठा घटती जाएगी।
(२) वे स्वय को एव आपको भी शान्ति नही दे पाएंगे।
(३) परिवार मे किसी की भी धर्म साधना शान्त चित्त से नही हो पाएगी।
(४) अधिक उद्वेग बढने पर कोई सदस्य आत्म-हत्या भी कर सकता है।
(५) सभी पारिवारिक जन अनवरत आर्त्तध्यान करते रहेगे।
(६) मित्र एव अन्य रिस्तेदार भी घर पर आना वन्द कर देंगे।
(७) अतिथि एव मेहमानो का आपके यहा सत्कार नही होगा।
(८) आपके प्रति किसी के मन मे प्रेम अथवा बहु-मान नही रहेगा।
(९) सवसे मुख्य वात—निरन्तर कलुषित विचार वने रहने से सभी को निरन्तर कर्म वन्धन होता रहेगा।

तुम्हारे पास धन है तो सर्वप्रथम अपने परिवार को आवश्यक भोजन, वस्त्र एव अन्य सुविधाए पूरी करने का विचार करो । फिर उसका उपयोग परमार्थ मे करो ।

परमार्थ मे धन का उपयोग करते समय यह ध्यान रखो—गरीब मित्र, नि सहाय बहिन या विधवा बहिन, कोई गरीब ज्ञानीजन—सज्जन पुरुष आदि के सहयोग के दायित्व को प्राथमिकता देनी चाहिये । इस क्षमता के अभाव मे वृद्ध माता-पिता, पत्नी एव बच्चो के भरण-पोषण का ध्यान तो रखना ही चाहिये ।

जहां का सम्पूर्ण वातावरण ही अपने स्वार्थों मे सिमट कर दूसरो का शोषण करने वाला बन जाता है, वहा आत्मीयता अथवा आन्तरिक स्नेह की चर्चा निरर्थक हो जाती है।

जहा पूरा वातावरण ही स्वार्थ पोषी हो, वहा परमार्थ की चर्चा करने वाला बचेगा ही कौन ? वातावरण का प्रभाव भी तो अबूझ होता है।

सन्तान के सस्कारो के सम्बन्ध मे माता-पिताओ को बचपन से ही सतर्क रहना चाहिये। बच्चो के बडे होने के बाद उन्हे नियन्त्रित करने का प्रयास नई समस्याओ को जन्म देता है– सक्लेश का निमित्त बन जाता है।

आज अधिसंख्य माता-पिता इस समस्या के शिकार हो रहे हैं कि उनके बच्चे गलत मार्ग पर जा रहे है, किन्तु ये विचार उनकी अदूरदर्शिता के द्योतक हैं। समय पर उन्होने सस्कारो के प्रति ध्यान नही दिया।

सत्संग का रंग वहुत गहरा एवं महत्तम होता है, एक बार लग जाना चाहिये, फिर तो आपकी आत्मा को साधना मे सरावोर कर देगा ।

ज्ञानियों एव त्यागियों का संसर्ग आत्मा को सहज आनन्द से सन्तृप्त कर देता है । किन्तु आज तो इन्सान दुर्व्यसनो मे अर्थात्—दुर्जनो के ससर्ग मे आनन्द की खोज कर रहा है, जो उसे कभी नही मिल सकता है ।

आपको पुण्योदय से अच्छे सयोग एव सभी सुविधाए प्राप्त हो जाए, किन्तु यदि आप पुरुषार्थ ही न करें तो आत्मशुद्धि का मार्ग प्रशस्त नही हो सकता है।

पहले सम्यक्ज्ञान का पुरुषार्थ करो अर्थात्—सत्य-असत्य-असली-नकली की पहचान तो करलो। हेय, ज्ञेय और उपादेय का बोध प्राप्त करो।

तुम जिस विपय मे प्रगति पथ पर वढना चाहते हो, उस विषय के आदर्श व्यक्तित्वों के जीवन पर उनकी निष्ठा एव चारित्र शीलता पर अवश्य चिन्तन करो।

महापुरुषों के आदर्श व्यक्तित्व का पठन, श्रवण एवं चिन्तन हमारे लिये बहुत बडा प्रेरणा स्रोत हो सकता है, मार्ग दर्शक हो सकता है।

मानव जीवन वास्तव मे दुर्लभ है 'यह सामान्य सिद्धान्त है कि जो अल्प होता है वह बहु-मूल्य होता है। ससार मे देव, नारक असख्यात है, तिर्यंच अनन्त है, जबकि समनस्क मनुष्य सख्यात ही हैं।

हमे यह दुर्लभ बहुमूल्य जीवन मिल गया, हम निश्चित ही भाग्यशाली हैं, किन्तु यदि इसका सदुप-योग करना नही आया, इससे हम आत्म साधना जैसा लाभ नही उठा सके तो यह ऐसे ही व्यर्थ चला जाएगा, जैसे बहुमूल्य रत्न को समुद्र मे फेक दिया जाये।

'मौत' बड़ा डरावना शब्द है, किन्तु ज्ञानीजन यह जानते है कि—'यह सत्य है' यथार्थ है, फिर इससे डरना क्यो ? यथार्थ को तो स्वीकारना ही पड़ेगा ।

मृत्यु के चिन्तन से—जलती चिता को देखकर भी अनेक व्यक्तियो के मन में विरक्ति का प्रकाश प्राप्त होता रहा है ।

धर्म कर्त्तव्य की दृष्टि से जो कुछ करना है, पहले करलो, उसे कल पर मत छोड़ो। क्या पता कल आये या नही ?

दुष्कर्मों—पाप कार्यों को हमेशा कल पर धकेलते रहो—सत्कर्मों को आज अभी करते रहो, जीवन दीप जलता रहेगा।

धर्मोपदेशक का तो कर्तव्य होता है—सन्मार्ग दिखाते रहना । कोई माने या न माने । उपदेष्टा की तो आत्म शुद्धि निश्चित ही है ।

सच्चा उपदेशक वीतराग वाणी को अपने सम्मुख रखता है, उससे विपरीत कुछ भी नही कहता है, वह तो आत्म शुद्धि के द्वार खोल ही लेता है । श्रोता खोले या न खोले ।

हीरा जौहरी की दृष्टि मे हीरा होता है—मूल्यवान् होता है । चरवाहा उसे काच का टुकडा ही समझेगा । वस्तु का मूल्य वस्तु के स्वरूप एव उपयोग को समझने वाले की दृष्टि मे ही होता है ।

मानवीय प्रज्ञा का मूल्य उसकी उपयोगिता को समझने वाला ही कर सकता है, और जो इसकी बहुमूल्यता को समझ लेता है, वह राग-द्वेष की वृद्धि एवं सासारिक नाकुछ कार्यो मे ही इसका उपयोग नहीं करता है ।

चिन्तन एवं धर्म श्रवण का अनिवार्य गुण है—'एकावधानता' 'जागृति'। जागृति पूर्वक किया गया चिन्तन अथवा धर्म श्रवण हमे रूपान्तरित करता जाता है—हमारे आचरण को बदलता जाता है।

चिन्तन अथवा धर्म श्रवण गतानुगतिकता या उपेक्षा बुद्धि से नही होना चाहिये। अन्यथा हजार प्रवचन भी तुम्हे आनन्द नही दे पाएंगे, बदल नही सकेंगे।

ज्ञान शून्य धर्माचरण करने वाले लोग अहकार के पुतले बने फिरते है । उन्हे अपनी उथली-थोथी धर्म क्रिया का घमण्ड हो जाता है, वे अपने आपको वडा धार्मिक मान वैठते हैं, जो धर्म के लिये आने वाली पीढी के लिये बडा घातक होता है ।

धर्म क्रिया विधियो के अनुष्ठान के साथ यदि उसका ज्ञान हो तो वह क्रिया रस प्रद ही नही बनेगी, हमे महानता की ओर ले जाएगी । हमे नम्रतम वनाकर आत्मा की गहराई का स्पर्श करने योग्य बना देती है । इसीलिये कहा गया है—'ज्ञान भार क्रिया बिना' ।

जिस धर्म का पालन आप नही कर सकते हैं, तो जो पालन करते है उनकी प्रशसा तो करे। ऐमा करने से उस धर्म के प्रति आपके मन मे अभिरुचि जागृत होगी ?

आज सत्कार्यों की अनुमोदना कम होती जा रही है। प्रतिस्पर्धा एवं ईर्ष्या के इस युग मे धर्म कृत्यो की प्रशंसा नही, निन्दा ही अधिक होती है। परिणाम सामने है—श्रद्धाहीनता।

वीतराग भगवन्तो ने प्रवक्ता साधको के लिये धर्मोपदेश देना कर्त्तव्य बताया है। यह किसी पर उपकार करना नही है। उपदेशक किसी पर उपकार नही करता, वह तो अपना कर्त्तव्य पूरा करता है।

धर्म श्रवण के पश्चात् हमारे भीतर चिन्तन, मनन एव अनुशीलन की एक प्रक्रिया का विकास होना चाहिये। अनुशीलन के विना श्रवण का प्रतिफल प्राप्त नही हो सकता है।

प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति का यह सामान्य धर्म है कि वह प्रतिदिन धर्म श्रवण अथवा स्वाध्याय अवश्य करे।

धर्म श्रवण किसके द्वारा करना यह भी एक विचारणीय बिन्दु है। 'धर्म श्रवण आचरण निष्ठ व्यक्ति द्वारा किया जाय तभी वह प्रभावशाली होगा।

पुस्तकीय ज्ञान कहानी-किस्से अथवा कुछ चुटकुले सुनाकर मनोरजन कर लेना धर्मोपदेश नही है। धर्मोपदेश का अर्थ है—साधना की गहन विवेचना करके श्रोताओ के हृदय को बदल देना।

मनोरजन की दृष्टि से धर्मोपदेश दिया अथवा सुना नही जाता है। धर्मोपदेश के द्वारा गहन चिन्तन के द्वार उद्घाटित होने चाहिये, आत्म शुद्धि होनी चाहिये।

वह उपदेशक सफल वक्ता माना जाता है जो श्रोताओ के स्तर को जाच-परख कर उपदेश देता है ।

प्रवक्ता होना अलग बात है और धर्मोपदेशक होना अलग । मर्धोपदेशक किसी को खुश करने की ही नीति नही रखता, वह तत्त्व बोध कराने को मुख्य उद्देश्य मानता है ।

यदि कुछ बनना है तो लोगो की परवाह छोडो। दुनिया क्या कहती है, इसकी चिन्ता मत करो, तुम्हारी आत्मा क्या कहती है इस पर अमल करो।

अपनी दृष्टि ही अपने जीवन का सृजन करती है। यदि अपनी दृष्टि सम्यक् है, पवित्र है तो जीवन उच्च बनेगा ही।

जिसने पैसे को ही सब कुछ मान लिया और जो पैसे के पीछे पागल बना फिरता है, वह आत्मा-परमात्मा के विषय मे कुछ चिन्तन ही नही कर सकता है। उसकी आत्मा इतनी सवेदन शून्य हो जाती है कि वह दूसरो के दुःख दूर करना तो दूर रहा स्वय के परिवार अथवा स्वयं के शरीर की सुख सुविधा का भी ध्यान नही रख सकता है।

पैसे को मालिक नही सेवक बनाओ। सेवक-नौकर यदि आपकी सेवा न करे तो आप उस पर कितने नाराज होते है। जो पैसा आपको सुख न दे, केवल सचय एव सरक्षण का दु.ख ही दे, वह पैसा क्या काम का ?

धर्म साधना करने के लिये भी साधन तो शरीर एव इन्द्रिया ही है, यदि ये स्वस्थ नही रहेगे तो साधना कैसे होगी ? कमजोर इन्द्रियो एव अशक्त तन से कुछ धर्म कर भी लिया तो वह बुझे मन से होगा, उसमे जीवन्तता नही होगी ।

साधना शुद्धि की दृष्टि से शरीर के प्रति भी लापरवाही मत करो । कहा गया है—'शरीरमाद्य खलु धर्म साधन' । शरीर स्वस्थ रहेगा तो साधना के प्रति मन का झुकाव बढता जाएगा ।

आत्म चिन्तन करना कोई अधिक कठिन नहीं है यदि एक बार समझ लिया जाए तो इससे सरल और कोई कार्य ही नही है। तैरना नही जानने वाले के लिये तैरना एक कठिन क्रिया है, किन्तु जिसने तैरना सीख लिया उसके लिये तैरना कितना सुगम है।

आत्म चिन्तन का अर्थ है, आत्मा की विविध अवस्थाओ–पर्यायो एव उसके शुद्धाशुद्ध स्वरूप का चिन्तन करना।

आत्म चिन्तन कैसे किया जाय इसके लिये कुछ सूत्र समझलो। आत्म चिन्तन निम्न रूपो मे किया जा सकता है—

(१) आत्मा का स्वरूप क्या है ? आत्मा सादि है या अनादि।
(२) आत्मा पर पदार्थों के साथ ममत्ववान् कैसे बना ? क्यो बना और कब से बना ?
(३) आत्मा पर कर्म कैसे बन्धते है? क्यो बन्धते हैं?
(४) कर्म कितने है ? शुभाशुभ कर्मो का आधार क्या है ? कर्म बन्धन की प्रक्रिया कैसी है ?
(५) बन्धे हुए कर्म फल कब कितना और किस रूप मे देते हैं ?
(६) क्या कर्म फल को भोगे बिना भी कर्मो की निर्जरा की जा सकती है ?
(७) क्या कर्मो को शुभाशुभ रूप मे परस्पर बदला जा सकता है—कर्मो का सक्रमण हो सकता है?
(८) कर्मो की निर्जरा कैसे होती है, कब होती है और निर्जरा किसे कहते हैं ?
(९) कर्म बन्धन के प्रमुख हेतु क्या है ?
(१०) मैं इन बन्ध हेतुओ को कैसे नष्ट कर सकता हू?
(११) आत्मा कितने प्रकार की है ? आत्मा की मुक्ति क्या है ?
(१२) मोक्ष क्या है ? मोक्ष मे गई हुई आत्मा पुन आती है या नही ?
(१३) मुक्ति साधना मे पुरुषार्थ का क्या स्थान है ?
(१४) कर्म बडा है या पुरुषार्थ ? आदि.....

धर्म साधना श्रद्धा के आधार पर होती है, किन्तु उसमे प्रखर प्रज्ञा-तीक्ष्ण बुद्धि की भी आवश्यकता होती है ।

प्रखर बुद्धि के अभाव मे कभी-कभी धर्माचरण विपरीत दिशा मे भी चला जाता है, जो अपवर्ग की बजाय नरक मे ले जाने वाला बन जाता है ।

व्यक्ति पढा लिखा न हो, बुद्धि की कमी हो, किन्तु यदि उसमे सरलता का गुण हो, विनम्रता हो तो वह तत्त्व को समझने मे सक्षम हो सकता है—उसे सुगमता से समझाया जा सकता है। किन्तु बुद्धिमान्—आग्रही एव अविनीत को समझाना अत्यन्त कठिन होता है।

सरलता एव विनम्रता ये दो गुण भी यदि परिपूर्ण मात्रा मे हो तो आत्म कल्याण के मार्ग मे कोई अडचन नही आएगी।

बुद्धि के प्रकर्ष एव पैनेपन के लिये गुरु का चरणाश्रय ग्रहण करो। गुरु सेवा से बढ़कर विशुद्ध बुद्धि के लिये और कोई साधना नही है।

गुरु सेवा कितने ही लम्बे समय तक करनी पडे अग्लान भाव से बिना रूके—विना थके करनी चाहिये। वह निश्चित ही एक दिन आपकी प्रज्ञा के द्वार उद्घाटित कर देगी।

अपने आपको बुद्धिमान मानने वाला व्यक्ति प्रायः अहं ग्रस्त होकर दूसरो को हीन बुद्धि मानता है, जो स्वय उसे बुद्धि हीन सिद्ध करता है।

विनम्र एव श्रद्धा सम्पन्न व्यक्तियो को ही प्रखर एवं विवेकी प्रज्ञा प्राप्त होती है। वे ही जीवन में उच्च आदर्श स्थिति तक पहुंच पाते हैं।

अपने आपको 'मैं कुछ हूं' के अहंकार से मुक्त रखो ।

विनम्र बने रहो । सदा यह सोचो कि मुझे कुछ बनना है ।

'अध्यात्म निष्ठ बने रहने के लिये तीनो बातो को स्मृति मे बनाए रखो—

(१) अपने द्वारा प्रमादवश हो गये दुष्कृत्यो की आत्मसाक्षी से निन्दा करते रहो ।

(२) सत्कार्यों की हार्दिकता पूर्वक प्रशसा करते रहो ।

(३) अरिहन्त-सिद्ध, (वीतराग भगवन्त), साधु एव वीतराग मार्ग की शरण ग्रहण करो ।

आत्मा के प्रति सतत जागृत रहने वाले व्यक्ति को ही अध्यात्म निष्ठ कहा जा सकता है ।

अपने आपको 'मैं कुछ हूं' के अहंकार से मुक्त रखो ।

विनम्र बने रहो । सदा यह सोचो कि मुझे कुछ बनना है ।

'अध्यात्म निष्ठ बने रहने के लिये तीनो बातो को स्मृति मे बनाए रखो—

(१) अपने द्वारा प्रमादवश हो गये दुष्कृत्यो की आत्मसाक्षी से निन्दा करते रहो।

(२) सत्कार्यों की हार्दिकता पूर्वक प्रशसा करते रहो।

(३) अरिहन्त-सिद्ध, (वीतराग भगवन्त), साधु एव वीतराग मार्ग की शरण ग्रहण करो।

आत्मा के प्रति सतत जागृत रहने वाले व्यक्ति को ही अध्यात्म निष्ठ कहा जा सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति यदि मोह-आसक्ति से मुक्त होकर समत्व भाव से अपने कर्त्तव्यो के प्रति जागृत रहे तो ससार आनन्द पूर्ण बन सकता है ।

जहा–जिस परिवार अथवा सस्थान में प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यो के प्रति जागृत होगा; वहा विवाद अथवा सघर्ष का कोई स्थान नही रहेगा ।

नीव की सुदृढ़ता की उपेक्षा करके बनाया गया भवन कभी भी गिर पडेगा। शुद्ध-सम्यग्दृष्टि के अभाव मे की गई साधना भी साधक को कभी भी पथ चलित कर सकती है।

भवन की दीर्घकालिक सुस्थिति मे जैसा नीव का महत्व है, वैसा ही, उससे भी बढ कर साधना मे विशुद्ध दृष्टि का महत्त्व है।

यद्यपि वर्तमान के सामाजिक, राजनैतिक-दूषित वातावरण मे जीवन व्यवहार के सामान्य नियमो का पालन अत्यन्त कठिन हो गया है, किन्तु इसके बिना चलेगा नही।

विषमतम परिस्थितियो में भी नियमो पर दृढ रहने वाला व्यक्ति ही आगे बढने की क्षमता अर्जित कर सकता है। दूषित वातावरण मे भी आप अपनी नीति मत्ता पर सुदृढ-रह कर दिखाओ तो आपकी विशेषता है।

जहां तक बन सके निकटतम परिस्थितियों में इधर-उधर भटकने समाधान खोजने की बजाय गुरु चरणो का आश्रय प्राप्त करते रहो, जीवन मे कदम-कदम पर उन्ही का मार्गदर्शन लो, तुम्हारा जीवन व्यवस्थित बना रहेगा।

गुरुजनो का मार्गदर्शन जीवन को सुदृढ सुव्यवस्थित ही नही बनाता, अनेक अयाचित विपत्तियो से भी बचा देता है और आत्मा निरर्थक पाप से बच जाती है।

याद रखो, इस जन्म जीवन मे जिस-जिस विषय मे अहकार किया है, अगले जन्म मे वे सभी पदार्थ या स्थितिया निम्न स्तर के उपलब्ध होगे ।

इन्द्रियो की अपने-अपने विषय मे तीव्र आसक्ति से बचाना ही इन्द्रिय विजय है । इन्द्रिय विजेता बने बिना मुक्तिमार्ग की साधना नही हो सकती है ।

स्मरण रखो, अन्य सभी इन्द्रियो को पोषण रस से मिलता है अत· रसनेन्द्रिय पर पूरा नियन्त्रण रखो । इसके लिए निम्न सावधानिया रखो—

(१) अधिक चरपरे—चटपटे पदार्थ मत खाओ ।

(२) अभक्ष्य खान-पान को छूओ ही नही ।

(३) इन्द्रियो को उत्तेजित करने वाले घृष्ठ पदार्थ मत खाओ ।

(४) भूख से कम खाओ । जो खाओ वह स्वाद की दृष्टि से मत खाओ ।

(५) रात्रि भोजन का सर्वथा त्याग करो । दिन मे भी भोजन के प्रति नियमित रहो ।

(६) पाच तारा एव गन्दे होटलो मे खाना बिलकुल मत खाओ ।

सदैव याद रखो सर्वाधिक पाप चक्षु इन्द्रिय के विषय-रूप के कारण होते हैं, अत' इस पर विजय पाना अधिक आवश्यक है। इसके लिए निम्न बातो का ध्यान रखो :—

(१) दूसरो का वेश-विन्यास जो राग-भाव उत्पन्न करे, ललचाई दृष्टि से मत देखो।

(२) मारधाड-लडाई-झगडे के दृश्य मत देखो।

(३) विकृत भावनाओ के प्रबलतम स्रोत नाटक, सिनेमा, टी वी, वीडियो आदि मत देखो।

(४) पुरुषो को पर नारी का रूप नही देखना चाहिए।

(५) स्त्रियो को पर पुरुष का रूप नही देखना चाहिए।

(६) अश्लील निम्न स्तर का साहित्य मत पढो।

(७) धर्म गुरुओ के दर्शन अवश्य करो।

(८) धार्मिक साहित्य अवश्य पढो।

इन्द्रिय विजय ब्रह्मचर्य साधना का अनिवार्य अंग है । इन्द्रिय विजेता ही ब्रह्मचर्य का परिपूर्ण विशुद्ध पालन कर सकता है ।

वैभव, पद और प्रतिष्ठा की तृष्णा से अपने आपको बचाए रखना साधना की प्रारम्भिक भूमिका है ।

ऐसा अभ्यास प्रारम्भ करो कि मन का घोडा तुम्हारे इशारे पर चले । साधना तभी सफल होती है जब मन तुम पर नही, मन पर तुम सवार हो जाओ ।

चूंकि मन अनादिकाल से आतमा पर सवार होता चला आ रहा है अत उसे अपना सवार बना लेना सरल नही है, तथापि साधक चित्त के लिए कोई कठिन भी नही है ।

हमारे जीवन का सबसे बडा शत्रु क्रोध है। क्रोध शत्रु बाहर से ही नही भीतर से आक्रमण करता है। यह ऐसी शक्ति लेकर उपस्थित होता है कि हमारे चिन्तन द्वार बन्द हो जाते है और चिन्तन शून्य-अर्धविक्षिप्त दशा मे पहुच जाते हैं।

हमारी साधना का एक यह प्रमुख कार्य क्षेत्र होना चाहिए कि हम निरन्तर क्रोध शत्रु को परास्त करते रहे। वही विजय हमारी सच्ची विजय होगी।

हमारे शत्रु बाहर मे नही, अन्दर में हैं, वे हैं काम, क्रोध, लोभ, मान, माया और हर्ष। ये हमारे भीतर जमकर आसन लगाए हुए हैं। इन शत्रुओ पर विजय प्राप्त करो, इन्हे शीघ्र बाहर खदेड दो।

आत्म विजय का अर्थ है—आत्मा को अपने मूल रूप में ले आना। कामादि शत्रुओ के घेरे से बाहर निकाल लेना।

साधक के लिए अपनी साधना व्यवस्थिति मे अनुशासन बद्धता का होना आवश्यक है। अनुशासन बद्ध व्यक्ति अपने पथ से सहसा विचलित नही हो सकता ।

अनुशासन का अर्थ है—अपनी स्वीकृत मर्यादाओ के प्रति सदा सजग रहना एवं अनुशासक के इशारे से जरा भी इधर-उधर न होना। उनके सकेतो को बिना किसी तर्क के तत्काल स्वीकृत करना ।

जरा विचार करे—ईर्ष्या की आग कितनी भय-कर होती है ? ईर्ष्या का आवेग व्यक्ति को न तो धार्मिक रहने देता है और न सज्जन । यह विनय, विवेक, गुरु भक्ति आदि सद्गुणो को जला कर राख कर देता है ।

ईर्ष्या तो ऐसा "स्लो पाइजन" है कि वह धीरे-धीरे तन और मन दोनो को समाप्त कर देता है ।

महान् व्यक्ति का सर्वतो महान् है—"सहृदयता"।

जो सहृदय नही होता, वह धार्मिक नही हो सकता।

प्रवचन श्रवण के दोष

(१) प्रवचन प्रारम्भ होने के बाद मे आना ।

(२) बाद मे आना और आगे आकर बैठना ।

(३) वक्ता के सामने नहीं देखना, इधर-उधर देखना ।

(४) आपस मे बातें करने लगना ।

(५) छोटे-छोटे बच्चो को लेकर आना और सम्भालना नही ।

(६) बीच-बीच मे प्रश्न पूछना ।

(७) असभ्यता से बैठना ।

(८) अनुचित वेशभूषा मे आना ।

महान् पुण्य योग से आपको कान प्राप्त हुए हैं, किन्तु किस लिए ? क्या सुनने के लिए ? ध्यान दो, इनका उपयोग निम्न कार्यो में ही करे—

(१) प्रभु प्रार्थना या धार्मिक गीतो का ही श्रवण करो ।

(२) विनय पूर्वक धर्म गुरुग्रो का उपदेश सुनो ।

(३) सज्जनो के या गुणवान् पुरुषो के प्रेरणास्पद चारित्र सुनो ।

(४) धर्मनिष्ठ मित्रो की तत्त्व ज्ञान सम्बन्धी चर्चा सुनो ।

(५) अपनी निन्दा हंसते-२ सुनो । सावधान उस समय जरा भी क्रोध न आने पाए ।

(६) जो कुछ भी आत्म-कल्याण मे सहयोगी हो, उसे बडी तन्मयता से सुनो ।

श्रद्धा को सीमित शब्दो के दायरे मे बाधा नही जा सकता । श्रद्धा शब्दातीत ही नही मन के केन्द्र से भी परे अर्थात् विचारातीत होती है ।

जहा सम्पूर्ण समर्पणा होती है, वहा तर्क—वितर्क, विचार सब कुछ गौण होते हैं, वहा केवल रहती है—अगाध श्रद्धा, 'श्रद्धा श्रद्धा ।

महान् पुण्य योग से आपको कान प्राप्त हुए हैं, किन्तु किस लिए ? क्या सुनने के लिए ? ध्यान दो, उनका उपयोग निम्न कार्यों मे ही करें—

(१) प्रभु प्रार्थना या धार्मिक गीतो का ही श्रवण करो ।

(२) विनय पूर्वक धर्म गुरुओ का उपदेश सुनो ।

(३) सज्जनो के या गुणवान् पुरुषो के प्रेरणास्पद चारित्र सुनो ।

(४) धर्मनिष्ठ मित्रो की तत्व ज्ञान सम्बन्धी चर्चा सुनो ।

(५) अपनी निन्दा हसते-२ सुनो । सावधान उस समय जरा भी क्रोध न आने पाए ।

(६) जो कुछ भी आत्म-कल्याण मे सहयोगी हो, उसे बडी तन्मयता से सुनो ।

श्रद्धा को सीमित शब्दो के दायरे मे बाधा नही जा सकता । श्रद्धा शब्दातीत ही नही मन के केन्द्र से भी परे अर्थात् विचारातीत होती है ।

जहा सम्पूर्ण समर्पणा होती है, वहा तर्क—वितर्क, विचार सब कुछ गौण होते हैं, वहा केवल रहती है—अगाध श्रद्धा, 'श्रद्धा श्रद्धा ।

राग भाव से या मोह भाव से पुरुष को पुरुष के साथ भी स्पर्श नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार स्त्री को भी राग या मोह से स्त्री के शरीर का स्पर्श नहीं करना चाहिए।

मैथुन वृत्ति अथवा विलास वृत्ति प्रज्वलित हो वैसे सिनेमा-नाटक आदि नही देखने चाहिए। न वैसे चित्र देखने चाहिए। वैसी बातें या गीत भी नही सुनने चाहिए और न ही वैसी पुस्तकें पढ़नी चाहिए।

साधना का सबसे महत्वपूर्ण सम्बल है—श्रद्धा। किन्तु श्रद्धा सम्यग् होनी चाहिए। सम्यग् श्रद्धा के अभाव मे साधना साधना नही रह जाती वरन् वह विराधना बन जाती है।

श्रद्धा शब्द एक सामान्य शब्द मात्र है, किन्तु इसका प्रभाव अनन्तता से परिविष्ठित है है। चूकि श्रद्धेय के प्रति या साधना पद्धति के प्रति समर्पणा अप्रतिम होती है। अतः श्रद्धा सहज ही अपरिमेय हो जाती है।

राग भाव से या मोह भाव से पुरुष को पुरुष के साथ भी स्पर्श नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार स्त्री को भी राग या मोह से स्त्री के शरीर का स्पर्श नही करना चाहिए।

मैथुन वृत्ति अथवा विलास वृत्ति प्रज्वलित हो वैसे सिनेमा-नाटक आदि नही देखने चाहिए। न वैसे चित्र देखने चाहिए। वैसी बाते या गीत भी नही सुनने चाहिए और न ही वैसी पुस्तकें पढ़नी चाहिए।

साधना का सबसे महत्वपूर्ण सम्बल है—श्रद्धा। किन्तु श्रद्धा सम्यग् होनी चाहिए। सम्यग् श्रद्धा के अभाव में साधना साधना नहीं रह जाती वरन् वह विराधना बन जाती है।

श्रद्धा शब्द एक सामान्य शब्द मात्र है, किन्तु इसका प्रभाव अनन्तता से परिविष्ठित है है। चूंकि श्रद्धेय के प्रति या साधना पद्धति के प्रति समर्पणा अप्रतिम होती है। अतः श्रद्धा सहज ही अपरिमेय हो जाती है।

यदि हम किसी के गुणो को देखते हैं—"गुण दर्शन" करते है तो उसके प्रति प्रमोद-प्रेम उत्पन्न होता है। यदि हम किसी के दोष देखते है—"दोष दर्शन" करते है तो उसके प्रति द्वैष उत्पन्न होता है।

गुणो के माध्यम से उत्पन्न प्रेम दीर्घ जीवी होता हैं। सौन्दर्य साधन के कारण से उत्पन्न हुआ प्रेम क्षणिक होता है। ऐसा प्रेम स्वार्थ पूर्ति के साथ ही उड़ जाता है।

ससार का समस्त व्यवहार विश्वास के आधार पर चलता है ।

विश्वासघात से वढकर अन्य कोई पाप नही है ।

गुणो और गुणियो से प्रेम करने का अर्थ है—अपने गुण-कोप को वढाते जाना ।

जिस दोष या गुण को हम सम्मानित करते हैं—अभिनन्दनीय समझते हैं, वह दोष या गुण हमारे अन्दर बढने लगेगा ।

जागृत चेता व्यक्ति ही अशुभ से वचकर शुभ के प्रति समर्पित हो सकता है ।

हमे सदैव शुभ-अशुभ के प्रति सजग रहकर द्रष्टा भाव या आत्म द्रष्टा स्थिति मे रमण करना चाहिए ।

यदि तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो तो अपने अन्दर के शत्रुओ पर विजय प्राप्त करो।

दूसरो पर विजय प्राप्त करना बहुत सरल है, अपनी असद् वृत्तियो पर विजय पाना ही कठिन है, किन्तु यही विजय वास्तविक विजय है ।

धर्म श्रवण के लिए जो तीन बातें आवश्यक है, वे है–

(१) धर्म स्थान पर जाने के लिए घर से निकलते ही आत्मा के प्रति "जागरण" ।

(२) धर्म स्थान मे प्रवेश करते ही "मौन" ।

(३) धर्म श्रवण करते समय "अप्रमाद" ।

हमे जहा कही जाना है, उस गन्तव्य का वोध तो होना ही चाहिए। गन्तव्य वोध के अभाव मे हम भटकते ही रहेगे। उस गन्तव्य·वोध को ही हम लक्ष्य निर्धारण कहते है।

हमारा लक्ष्य है—आत्म कल्याण और·आत्म कल्याण का अर्थ है—ससार के अनादिकालीन द्वन्द्वो से मुक्त होकर सदैव के लिए परम और चरम आनन्द को उपलब्ध हो जाना। अतः हमारी समस्त साधना इसी केन्द्र पर प्रतिष्ठित होनी चाहिए।

प्रेम भाव के लिए ईर्ष्या एक गहरा जहर है। ईर्ष्या का जहर सदा-सदा से प्रेम को मारता चला आया है।

' ईर्ष्यावृत्ति की मानसिक क्रूरता उस "डायन" के समान है जो सब कुछ स्वाहा कर जाती है, जीवन को क्षत-विक्षत कर देती है। बचो इस डायन से।

आजकल गुणीजनो का अपमान करना, उनकी मजाक उडाना उन्हे पुराण पन्थी या दकियानूसी कहना, तो एक "फैशन" हो गई है ।

अपने से अधिक सुखी व्यक्ति को देखकर ईर्ष्या से भर उठना...उनसे घृणा करना, उनकी टीका-टिप्पणी करना तो दैनिक जीवन की एक "खुराक" हो गई है ।

विश्वास अर्जित करना, उसे सम्भालना एव उसी के अनुरूप आचरण करना वहुत वडी वात है ।

तुम्हे अपने आप पर विश्वास-भरोसा नही तो दूसरे तुम पर विश्वास कैसे करेगे ।

जिन शासन मे वर्तमान् काल मे आचार्य ही परम श्रद्धेय होते है। उन पर शासन सुरक्षा एव प्रभावना का महत्वपूर्ण दायित्व होता है। अपने ज्ञानालोक के अनुसार जो उन्हे उचित लगे, वे कर सकते हैं।

महान् आचार्य भगवन्तों की आशातना इस जीवन को ही नष्ट नही करती, आगामी जीवन के लिए नरक के द्वार भी खोल देती है।

अहकार और ममकार अर्थात् मैं और मेरा के साथ द्वेष और घृणा का भाव सहज जुड़ जाता है ।

अहकार से बढकर हमारे विकास का और कोई शत्रु नही है ।

जागरण किसी दूसरे के प्रति नही, अपनी ही चित्त वृत्तियो के प्रति होना चाहिए ।

जब हम स्वयं की चित्त वृत्तियो के प्रति सजग चेता बन जाएंगे तो अशुभ वृत्तियो के तस्कर हमारे भीतर प्रवेश ही नहीं कर पाएंगे ।

सहजता निश्चिन्तता एव निर्भयता साधक के मे तीन महान् गुण होते है ।

ऐसे परिवेश मे रहना पसन्द करो, जहां सहजता-निश्चिन्तता एवं निर्भयता का विकास हो—जीवन संघर्षों-तनावो का घर नही बने ।

यदि आप अविवाहित हैं तो आप किसी भी स्त्री या लडकी के शरीर का स्पर्श न करे ।

यदि आप छोटे वच्चे हैं तो माता-वहिन आदि के साथ स्पर्श कर सकते है । किन्तु यदि आप व्यस्क है तो अनावश्यक स्पर्श माता और वहिन का भी नही करें ।

ऐसे मोहल्ले मे रहना चाहिए जहा पुन.--पुन उपद्रव नही होते हो, पडौसी समान विचारो वाले हो और आपस मे रगडे-झगडे नही होते हो ।

जब कभी उपद्रव या झगड़े हो, ऐसे निरूपद्रव वाले स्थान मे चले जाना चाहिए जहा धर्म-अर्थ की क्षति न हो ।

इन्द्रिय वशवर्ति व्यक्ति जिस दु.ख सघर्ष अथवा अशान्ति से घिर जाता है, इन्द्रिय विजेता को उसका स्पर्श भी नही होता ।

दु ख का मूल है—इन्द्रिय विषयो के प्रति आसक्ति, सुख का मूल है—विषयो के प्रति विरक्ति ।

काम वासना का प्रबल आवेग इन्सान को इन्सान नही रहने देता है, वह शैतान और हैवान बना देता है।

वासना की उर्वरक भूमि विजातीय से एकान्त सम्भाषण है।

जहां गुणों पर प्रीति होगी वहां मन आनन्द से आप्यायित रहेगा ।

जहां द्वेष होगा, वहां चित्त विक्षिप्तता के सन्ताप से झुलसता रहेगा ।

किसी के गुणों का स्मरण कर-करके हृदय प्रफुल्लित होता रहे, अन्तरंग में हर्ष का ज्वार उठता रहे, हृदय भावविभोर होकर नाचने लगे, मन की इस आनन्दित स्थिति को कहते हैं—"प्रमोद भावना" ।

आत्म संयम अथवा विकार विजय के लिए यह आवश्यक है कि पहले मनोवृत्तियो पर नियन्त्रण-सयमन किया जाय ।

मनोवृत्तियो पर विजय तभी हो सकती है जब कि इन्द्रियो की विषयो के प्रति होने वाली दौड को रोका जाय ।

जो खान-पान, रहन-सहन आत्मा को बेहोश बनादे, उससे सदा बचो ।

इन्द्रियो को विकार मार्ग की ओर ले जाने वाली सामग्री—अच्छे स्पर्श, रूप, गन्ध, रस और शब्द से बचो ।

केवल धन की भूख-दौड़ सभी बुराईयो की जड है ।

पैसे की भूख हृदय की कोमलता, सहृदयता एवं आत्मीयता जैसे महान् गुणो को चट कर जाती है ।

काम वासना पर विजय पाने का सरल उपाय है—इन्द्रिय-वासना को उत्तेजित करने वाले दृश्यो को देखना बन्द करो, वैसे प्रसगो को सुनना-पढ़ना बन्द करो।

अगणित विकृतियां पैदा करने वाले चल चित्रो को देखना सदा के लिए छोड दो।

स्वयं के भोतर छिपे हुए शत्रुओ पर विजय प्राप्त करना सरल नही है....युद्ध करते रहो....अवश्य विजय प्राप्त होगी और वही विजय तुम्हे आत्म विजेता बनाकर परिपूर्ण परमात्मा बना देगी ।

किसी दुश्मन को परास्त करके आपको कितना हर्ष होता है ? क्या अन्दर के क्रोधादि विकारो को पराजित करके भी कभी हर्ष मनाते है ?

साधना की धुरी है—साध्य के प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पण। समर्पणा साधना का आधार-आधेय सब कुछ है।

अपनी मजिल के प्रति समर्पित व्यक्ति ही मजिल को अर्थात् साध्य को प्राप्त कर सकता है।

आम व्यक्ति के दिल मे स्थान बना लेना सामान्य बात नही है, किन्तु वह अत्यन्त कठिन भी नही है।

एक उच्चतम गुण भी अनेको व्यक्तियो मे अपना स्थान बना लेवें को पर्याप्त है ।

अपने वेश विन्यास के प्रति इतना अवश्य ध्यान रक्खो कि वह किसी की वासना भड़काने मे निमित्त न बनें ।

आपकी वेश-भूषा ऐसी होनी चाहिए कि देखने वाले के मन मे विकृति के वजाय सात्विक प्रमोद भाव उत्पन्न हो। वह आप से स्वच्छता और सात्विक का सस्कार लेकर जाए ।

आश्रय ऐसे व्यक्ति का लीजिए जो समय पर आपको मार्ग दर्शन ही नही सुरक्षा भी प्रदान कर सके ।

हमारी सम्पन्नता एव विपन्नता पर "आश्रय" का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है ।

वैसा ही आहार ग्रहण करना चाहिए जो आत्म-साधना-आत्म विशुद्धि मे सहयोगी हो ।

वैसा ही सुनो…पढो देखो जो आत्म-विकास मे सहायक हो ।

किसी भी विजातीय अथवा सजातीय (स्त्री-पुरुष) के अंगो को विकार भावना से मत देखो, उनका स्पर्श मत करो ।

अपने शरीर के भी गुप्त अंगो का निष्प्रयोजन स्पर्श मत करो ।

साधना का हार्द है विषम से विषम परिस्थि-तियो मे मन का सन्तुलन बनाए रखना। मन के सन्तुलन के बनाए रखने का अभ्यास नही हुआ हो तो साधना का क्या अर्थ ?

साधना सभी विषम परिस्थितियो से जूझने की शक्ति प्रदान करती है। वह शक्ति प्राप्त गई तो समझिये साधना के द्वारा मन के का अभ्यास हुआ है और साधना - ९५

जीवन मे कभी भी कैसी भी विकट से विकट-तम परिस्थिति उत्पन्न हो फिर भी ये सकल्प सदा बने रहे कि मैं अपने लक्ष्य से कभी विचलित नही होऊगा।

अनेको बार हमे अपने लक्ष्य से अथवा आत्म केन्द्र से विचलित करने वाले प्रसंग उपस्थित होते है किन्तु उन प्रसंगो से किंचित् मात्र भी डांवाडोल न हो, यह हमारे जीवन की साधना की कसौटी है।

आत्म कल्याण की पूर्व भूमिका है—आत्म जागरण । जागृत व्यक्ति ही कुछ कर सकता है । सोए हुए व्यक्ति से किसी कार्य की अपेक्षा करना निरर्थक है । चाहे वह व्यावहारिक कार्य भी क्यो न हो । तो फिर आत्म कल्याण जैसे महत्वपूर्ण कार्य के लिए तो अन्तर्जागरण नितान्त अपेक्षित होगा ही ।

जागरण का अर्थ है—अपनी समस्त वृत्तियो प्रति परिपूर्ण रूप से सजग हो जाना, उनका बन जाना ।

मुक्ति की कामना है तो छोटे-छोटे दायरो से अनासक्त होना ही होगा।

छोटे दायरो को छोड़ने वाला व्यक्ति ही विराट से सम्पर्क कर सकता है।

बहुत उत्तेजक एव मादक पदार्थों के सेवन से वचो, क्योकि ये स्वास्थ्य को ही नही, आत्मा को भी हानि पहुचाते हैं।

नशीली दवाईयो अथवा किसी भी प्रकार के नशे का सेवन तुम्हे स्वय का दुशमन बना देगा, परिवार को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा, पिछली पीढी को वरवाद कर देगा। बचो वचो इस लत से एक वचो।

गुणीजनो की संगति मे रहना या उनके साथ सम्बन्ध बनाए रखना एक उच्च आदर्श है।

हम यदि गुणवान होगे तो ही गुणीजनो के हृदय मे हमारे लिए स्थान बनेगा ।

वैभव, पद, प्रतिष्ठा की लालसा ऐसी अपूर-णीय खायी होती है जो कभी भरी नही जा सकती है–बचो इस लालसा से ।

अपने कुल, जाति, ज्ञान, दान, मान रूप और तप आदि का अहकार मत करो । अहकार एक ऐसी आग है कि वह वर्तमान को ही भस्म नही करती, आगामी जीवन में उपलब्ध होने वाली उच्चता को भी जला कर भस्म कर देती है ।

वैसी समस्त–वृत्तियो-प्रवृत्तियो से बचो जो इन्द्रियो को जरा भी उत्तेजित करती हो ।

इन्द्रिय विषयों की विरक्ति आपको महान् व्यक्ति बना सकती है । क्योकि विषय विरक्ति से व्यक्ति द्रष्टा भाव का वरण कर लेता है ।

साधना का मूल उद्देश्य एव मूल मत्र है--अनासक्ति योग । आसक्ति है, वहा साधना नही विराधना ही सम्भव है ।

आसक्ति का अर्थ—अपने आप को किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थान के प्रति आबद्ध कर लेना । जहा आबद्धता है, वहा मुक्ति कैसे हो सकती है ?

सम्यग् दर्शन की सुस्थिरता के लिए जीवन व्यवहार के सामान्य नियमों का पालन आवश्यक है।

सम्यग् दर्शन-विशुद्ध तत्व श्रद्धा उत्थान का प्रथम सोपान है।

जहा प्रमोद भाव के अमृत की वर्षा होती है, वहा ईर्ष्या की आग सहज बुझ जाती है... अत. प्रतिदिन प्रमोद भाव के अभ्यास की आवश्यकता है।

प्रमोद भावना के विकास की पहली शर्त है— "आप किसी के विकास या सुख के प्रति ईर्ष्या न करें।"

यदि आप वयस्क या शादीशुदा हैं तो अपनी पत्नी के अलावा किसी भी स्त्री का हसी-मजाक मे भी स्पर्श न करें ।

यदि आप महिला हैं तो अपने पति के अतिरिक्त किसी भी पुरुष का स्पर्श न करें ।

कभी-कभी हर्ष और खुशी भी हमारे शत्रु बन जाते हैं। पाप करके उस पर खुशी मनाना, इससे बढकर हमारी आत्मा का शत्रु और कौन हो सकता है ?

पाप करना अपराध है…पाप करके उस पर प्रसन्न होना, उससे बडा अपराध है। पापाचरण की सजा तो यहा मिल सकती है किन्तु पापाचरण करके खुश होने की सजा परलोक मे ही मिल सकती है, जो कि अत्यन्त कठिन होती है।

हम आत्म कल्याण की चर्चा किया करते हैं किन्तु आत्म कल्याण किस चिड़िया का नाम है, यह वहुत कम व्यक्ति जानते है। आवश्यक है कि किसी चर्चा के पूर्व उस विषय की मूल परिभाषा का सम्यग् वोघ हो।

लक्ष्य शून्य साधना उस विक्षिप्त मनुष्य के समान है जो सडक पर विना उद्देश्य के दोड लगाता रहता है।

धर्म श्रवण से पूर्व निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

(१) प्रवचन मे मगलाचरण के पूर्व से ही उपस्थित रहना चाहिए ।

(२) कभी विलम्ब हो जाय तो पीछे ही बैठ जाना चाहिए, आगे आने की कोशिश नही करनी चाहिए ।

(३) बैठने का आसन सभ्य होना चाहिये ।

(४) वक्ता के सामने देखना चाहिए ।

(५) पूरे प्रवचन काल तक मौन रहना चाहिए ।

(६) दुध मुहे छोटे बच्चो को साथ मे नही लाना चाहिए ।

(७) विषय के अनुरूप प्रश्न करो, वह भी जिज्ञासा हो तो ।

(८) धारा प्रवाह चल रहे प्रवचन के मध्य प्रश्न नहीकरना चाहिए ।

(९) धर्म स्थानो मे उचित व मर्यादायुक्त वेशभूषा मे आना चाहिए ।

(१०) तत्व एकाग्रता पूर्वक सुनना चाहिए ।

(११) विषय के अनुरूप भाव परिवर्तन मुह पर आने चाहिये ।

"श्रोता की तन्मयता वक्ता को बोलने में तन्मय ही नही उत्साही भी बनाती ।"

ससार मे जिह्वा को सवसे कटु भी वताया गया है और सवसे मधुर भी । अत वोलते समय निम्न सावधानिया रखो—

(१) अनावश्यक चर्चा कभी मत करो—यथासम्भव कम से कम वोलो ।
(२) वोलो तो हित-मित-परिमित वोलो ।
(३) जव कभी क्रोध या द्वेप आ जाय तो मौन कर लो ।
(४) अधिक हसी मजाक मत करो ।
(५) चौवीस घटो मे कुछ घटे अवश्य मौन करो ।
(६) जहा वोलने से तनाव वढता हो या सघर्ष होता हो, वहा मौन कर लो ।
(७) जहा अपना सम्मान-आदर न हो वहा मौन कर लो ।
(८) दो व्यक्तियो की वात-चीत के वीच मे मत वोलो ।
(९) विना मागे सलाह देने की आदत मत रखो ।
(१०) किसी की रहस्यात्मक वात को प्रकट मत करो ।

अपने मार्ग द्रष्टा-गुरु के प्रति सदैव कृतज्ञ बने रहिये, क्योकि कृतज्ञता की ऊर्वर भूमि पर ही समर्पण भाव की खेती लहलहाती है, फूलती-फलती है।

जहां सम्पूर्ण समर्पण होगा वहा आयाचित ही अनन्त कृपा की वृष्टि होती रहेगी ।

विद्वान्, तपस्वी, ज्ञानी, दानी, नीतिमान आदि गुणीजनों की प्रशंसा, उनका बहुमान करके इन गुणो का प्रचार-प्रसार करिये और सहज पुण्य संचय करिये ।

गुणो की प्रशंसा मे कृपणता करना जीवन का बहुत बडा दोष है ।

अपनी मान्यताओ को दूसरो पर जबरदस्ती से थोपने का प्रयास न करे। केवल अपने विचारो को स्पष्ट भर कर दे ।

आपके विचार प्रस्तुत करने का तरीका सौम्य होगा—प्रभावक होगा तो सामने वाला सहज ही आपका बन जाएगा ।

अनत पुण्य योग से प्राप्त श्रवणेन्द्रिय से पुण्य न कमा सको तो पाप भी मत बढाओ। इसके लिए निम्न बातो का श्रवण मत करो—

(१) पराई निन्दा कभी मत सुनो, न ऐसी चर्चा मे बैठो।

(२) अपनी प्रशसा सुनने से बचते रहो।

(३) जिन सूचना समाचारो के सुनने से ग्रापके मन में तीव्र राग-द्वेष उत्पन्न हो, उन समाचारो को रस पूर्वक मत सुनो—सदा उनकी उपेक्षा करो।

(४) परिवार या ससार की उन चर्चाओ को मत सुनो, जो मोह भाव उत्पन्न करती हो। अथवा उन्हे सुनते समय ससार की असारता का विचार करो।

(५) गन्दे ग्रोर उत्तेजक गीत मत सुनो।

(६) जिन चर्चाओ से आत्म कल्याण मे व्यवधान हो, उनसे बचो।

(७) जिन बातो से आपको कोई लाभ न हो, ऐसी निरर्थक बातें मत सुनो। सुनना पड़े तो उन मे रस मत लो।

(८) ऐसे मित्रो की सगति से दूर रहो जो पर निन्दा मे रस लेते हो।